KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 1

स्वराज शृंखला - 1

मोदीराज में किसान

डबल आमद या डबल आफत?

योगेन्द्र यादव

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 2

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 3

स्वराज शृंखला-1

मोदीराज में किसान

डबल आमद या डबल आफत?

योगेन्द्र यादव

स्वराज अभियान प्रकाशन

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 4

शीर्षक : मोदीराज में किसान : डबल आमद या डबल आफत?
MODIRAJ ME KISAN : DOBLE AAMAD YA DOBLE AAFAT ?

स्वराज अभियान का प्रकाशन
द्वारा सुरेन्द्र पाल सिंह, सचिव (प्रकाशन), स्वराज इंडिया, एक्सए-6, सहविकास
68 आईपी एक्सटेंशन
नई दिल्ली-110092
फोन : 9845177160
ईमेल : contact@swarajindia.org
वेबसाइट : swarajindia.org

वितरण : वाणी प्रकाशन
21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन : 011-23273167, 23275710
ईमेल : vaniprakashan@gmail.com
वेबसाइट : www.vaniprakashan.in

मुद्रक : स्वराज अभियान प्रकाशन
पहला संस्करण, वर्ष 2018
प्रकाशित प्रतियां : 5000

कार्यकर्ता प्रति की सहयोग राशि : ₹ 20/-

मूल्य : ₹ 80/-

इस पुस्तक का कोई कॉपीराइट नहीं है। यहां प्रकाशित सामग्री का शैक्षणिक और गैर-व्यावसायिक उद्देश्य से प्रयोग करने के लिए किसी प्रकार की इजाजत लेने की आवश्यकता नहीं है। अलबत्ता लेखक/प्रकाशक को सूचित कर दिया जाए तो अच्छा लगेगा।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 5

विषय सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका 7

1. किसान विरोधी सरकार? 9

1.1 कुछ सवाल जिनका जवाब मिलना चाहिए
1.2 जवाब प्रचार से नहीं, प्रमाण से मिलेगा
1.3 इसलिए विधिवत सत्यापन जरूरी है

2. चुनावी वादों का क्या हुआ? 15

2.1 घोषणापत्र में किसान से बड़े-बड़े वादे किये गए थे
2.2 वादे जिन्हें सरकार भूल गई
2.3 लागत से डेढ़ गुना दाम के वादे से सरकार मुकर गई
2.4 वादा निभाने की बजाय लागत की परिभाषा पलट दी
2.5 प्रधानमंत्री 'आशा' के बदले मिली निराशा

3. सरकारी दावों में कितना सच? 33

3.1 कृषि में दोगुना खर्च का दावा सफेद झूठ
3.2 सिंचाई परियोजनाओं के दावों का अर्धसत्य
3.3 फसल बीमा योजना ने किसानों को ठगा
3.4 कृषि ऋण की हालत जस की तस है
3.5 नीम कोटेड यूरिया के हवाई दावे
3.6 सॉयल हेल्थ कार्ड उद्देश्यविहीन हुए
3.7 ई-नैम से किसान अछूता

4. आपदा के वक्त क्या किया? 49

4.1 राष्ट्रव्यापी सूखे के वक्त सरकार की बेरुखी
4.2 मंदी में किसान लुटता रहा सरकार देखती रही
4.3 रही-सही कसर नोटबंदी ने पूरी कर दी

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 6

5. कृषि नीति से नफा या नुकसान? 57

5.1 खेती की लागत घटाने के बजाय बढ़ाई
5.2 कृषि निर्यात बढ़ने के बजाय घटा
5.3 मनरेगा के विस्तार के बजाय गला घोंटने का प्रयास
5.4 पशुपालन पर ध्यान के बजाय धक्का
5.5 किसान की जमीन बचाने के जगह छीनने का प्रयास
5.6 वन अधिकार की रक्षा के बजाय कटौती

6. डबल आमदनी का माजरा क्या है? 67

6.1 मंजिल ही पता नहीं थी
6.2 न दिशा तय हुई न सफर शुरू हुआ

7. मोदी राज जिम्मेवार क्यों? 76

7.1 शाश्वत संकट का बहाना
7.2 यूपीए की विरासत का बहाना
7.3 प्राकृतिक आपदा का बहाना
7.4 अंतरराष्ट्रीय बाजार का बहाना
7.5 राज्य सरकारों की जिम्मेवारी का बहाना

8. किसानों का विरोध क्यों? 82

8.1 किसान विरोधी नीतियां और नीयत
8.2 किसान विरोधी राजनीति और व्यवस्था

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 7

भूमिका

न तो यह एक किताब है। न मैं इसका लेखक।

एक किताब में विषयवस्तु का जो फलक, समझ की जो गहराई और तर्क में जो नवीनता होनी चाहिए, वह इस दस्तावेज में नहीं है। बस एक सीधी-सादी बात को सपाट तरीके से बयान कर दिया गया है। इस विषय पर लेखक होने की मेरी कोई योग्यता नहीं है। न तो मैं पेशे से किसान हूं, न ही पढ़ाई-लिखाई के नाते कृषि विशेषज्ञ। इन पन्नों में शायद ही ऐसा कोई विचार है जो सिर्फ मेरा अपना है।

फिर भी अगर मैंने यह कोशिश या जुर्रत की तो इसलिए कि ऐसे किसी दस्तावेज की बेहद जरूरत थी। एक सच था जो बयां होने की मांग कर रहा था। पिछले चार साल से मैंने देश में घूम-घूम कर किसान की दशा को देखा है, उसके दर्द को महसूस किया है। सन 2015 में पंजाब से दिल्ली तक भूमि अधिग्रहण के सवाल पर ट्रैक्टर पर मार्च किया। अक्टूबर 2015 में कर्नाटक से हरियाणा तक सूखाग्रस्त इलाकों की संवेदना यात्रा की। मई 2016 में मराठवाड़ा से बुंदेलखंड के बीच दस दिन की जल-हल पदयात्रा की। अप्रैल 2017 में तमिलनाडु के सूखाग्रस्त जिलों की यात्रा की। फिर 2017 और 2018 के बीच पश्चिम, दक्षिण, पूर्व और उत्तर भारत के पंद्रह राज्यों में किसान मुक्ति यात्राओं में भाग लिया। जुलाई 2018 में हरियाणा के रेवाड़ी जिले में नौ दिन तक पदयात्रा की। इसके अलावा न जाने कितनी जगह किसानों के धरने-प्रदर्शन-आंदोलन-गोष्ठियों में भागीदारी की है।

इस दौरान मोदी राज के पहले तीन साल तो खेती और किसानी की दुर्दशा पर सरकार की चुप्पी खलती थी। पिछले एक साल से इस मुद्दे पर सरकारी प्रचारतंत्र का शोर चुभता रहा है। मीडिया में कृषि के बारे में उदासीनता और अज्ञान का आलम है। सरकार जो चाहे प्रचारित कर देती है। चंद लोगों को छोड़कर कोई टोकने वाला नहीं, कोई सवाल

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 8

पूछने वाला नहीं। इसी एहसास ने मुझे मजबूर किया कि मोदी राज के प्रचार और किसान के सच के बीच के इस फासले को लिखकर दर्ज करूं। शुरुआत प्रोफेसर नीरजा जयाल के आग्रह पर एक लंबे अंग्रेजी लेख से हुई। जब उस लेख को हिन्दी में लिखने बैठा तो उसने एक पुस्तिका और फिर एक पुस्तक का आकार ले लिया।

यहां प्रस्तुत की गई सामग्री एक सामूहिक प्रक्रिया से बनी है। मोदी सरकार की खेती-किसानी की नीतियों की समीक्षा का पहला प्रयास 2018 के बजट से पहले अविक साहा, कविता कुरुगंति, किरण विस्सा और मैंने मिलकर एक 'ग्रीन पेपर' के जरिये किया था। उसकी अधिकांश सामग्री यहां इस्तेमाल की गई है। इस लिहाज से हम चारों यहां प्रस्तुत सामग्री के लेखक हैं। सरकार की कृषि नीतियों के बारे में मेरी समझ प्रोफेसर अशोक गुलाटी, हरीश दामोदरन, हरवीर पंवार और देवेंद्र शर्मा जैसे लेखकों को पढ़कर बनी है। इस समझ को अखिल भारतीय किसान संघर्ष समन्वय समिति के साथियों के साथ हुई बातचीत और यात्राओं ने सुधारा है। इस संदर्भ में खासतौर पर सर्वश्री वी.एम. सिंह, राजू शेट्टी, हन्नन मौला, सुनीलम, आशीष मित्तल, प्रतिभा शिंदे, राजाराम सिंह, दर्शनपाल सिंह और मेधा पाटेकर का जिक्र करना जरूरी है। सामग्री को पुस्तक की शक्ल देने में सुरेंद्र पाल सिंह का विशेष आग्रह था। आंकड़े जुटाने में विकास झा ने मदद की। भाषा और प्रूफ पर नजर रखी राजेंद्र राजन ने, पांडुलिपि को अंतिम रूप दिया अजय प्रकाश ने, टाइपसेटिंग योगराज और कवर डिजाइन सैयद उस्मान ने की।

इन सब साथियों के सामूहिक प्रयास का फल आपके सामने है। लेखक के रूप में मेरा नाम सिर्फ इसलिए है कि अगर तर्क और तथ्य की कोई चूक हो तो उसकी जिम्मेवारी तय हो सके।

योगेन्द्र यादव

दिल्ली, 23 नवंबर 2018

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 9

अध्याय एक

किसान विरोधी सरकार?

1.1 कुछ सवाल जिनका जवाब मिलना चाहिए

क्या मोदी सरकार इस देश के इतिहास की सबसे किसान विरोधी सरकार है? अगर आप से यह सवाल पूछा जाए तो आपकी क्या प्रतिक्रिया होगी? यह पुस्तक आपसे इस सवाल पर संवाद करने के लिए लिखी गई है।

पिछले चार साल में इन पंक्तियों के लेखक ने इस देश के कोने-कोने में गांव, खेती, किसानी के सवाल पर यात्राएं की हैं। इस दौरान हर तरह के किसानों के सुख-दुख को देखा है। खेती-किसानी से जुड़े सब वर्ग के जानकारों से बात की है। जब-जब उनसे मोदी सरकार के बारे में यह प्रश्न पूछा जाता है तो अलग-अलग जवाब मिलते हैं। अकसर कई सवाल सुनने को मिले हैं:

- **एक साधारण, भोला-भाला किसान** पूछता है: मोदी जी किसान विरोधी कैसे हैं? वे तो आजकल हमेशा किसान की ही बात करते हैं?
- **गांव का पढ़ा-लिखा किसान** पूछता है: मोदी जी तो कहते हैं कि

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 10

जितना इस सरकार ने किसानों के लिए किया है उतना किसी ने नहीं किया। वो तो बहुत योजनाएं गिनवाते हैं। डबल आमदनी, लागत का ड्योढ़ा दाम, नीम कोटेड यूरिया और पता नहीं क्या-क्या। आप बिलकुल उलटा कह रहे हैं। मतलब उनकी सरकार ने कुछ भी अच्छा नहीं किया?

- **किसान कार्यकर्ता** पूछता हैः इसमें तो शक नहीं कि मोदी सरकार किसान-विरोधी है, लेकिन आपको नहीं लगता कि इस देश की सभी सरकारें किसान-विरोधी रही हैं? यह सरकार अन्य सरकारों से ज्यादा किसान-विरोधी कैसे है?
- **गांव और खेती की समझ रखने वाला पत्रकार** पूछता हैः क्या आप किसानों की दुर्दशा के लिए सिर्फ इसी सरकार को दोषी ठहराएंगे? जब मैं इस सरकार के मंत्रियों और अफसरों से पूछता हूं तो वे कहते हैं कि पिछली सरकार ने इतनी खराब हालत विरासत में दी थी, हम क्या करते?
- **कृषि विशेषज्ञ** पूछता हैः सरकार को दोष देना आसान है लेकिन क्या आपको नहीं लगता कि सारी व्यवस्था ही किसान-विरोधी है, इतिहास की धारा ही किसान के विरुद्ध है? कोई सरकार इसमें क्या कर सकती थी?
- **पढ़े-लिखे शहरी लोग और पत्रकार** पूछते हैंः आप सिर्फ किसान की बात क्यों करते हैं? बाकी लोग भी तो हैं हमारी अर्थव्यवस्था में। गांव और शहर, दोनों जगह क्या किसान से भी ज्यादा गरीब लोग नहीं हैं? क्या सरकार को सभी वर्गों में संतुलन की कोशिश नहीं करनी चाहिए?

हो सकता है आपके मन में भी इनमें से कोई सवाल हो, या फिर इन जैसा कोई और सवाल। हो सकता है आप भी सोचते हों कि मोदी सरकार के विरुद्ध इन बातों में कितनी सच्चाई है? हो सकता है आप भी खोजते हों कि किसी एक जगह इन सब प्रश्नों के उत्तर मिल जाएं, सभी बातों के सही तथ्य मिल जाएं, प्रमाण मिल जाए।

यह पुस्तिका इसी उद्देश्य से लिखी गई है। सबसे पहले हम एक

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 11

शुरुआती शंका का समाधान करेंगे। उसके बाद मोदी सरकार के किसान संबंधी कामकाज को चार हिस्सों में बांटकर उसका मूल्यांकन। अंत में इस सवाल पर विचार किया गया है कि इस दौरान किसानों की दुर्दशा के लिए किस हद तक मोदी सरकार को दोषी ठहराया जा सकता है। क्या मोदी सरकार वाकई देश की सबसे किसान-विरोधी सरकार है?

1.2 जवाब प्रचार से नहीं, प्रमाण से मिलेगा

शुरुआत एक बिलकुल साधारण सवाल से। जो भी व्यक्ति अखबार पढ़ता है, टीवी देखता है, उसे जरूर लगता है कि यह सरकार किसानों के प्रति पहले से ज्यादा ध्यान दे रही है। अखबारों में बड़े-बड़े विज्ञापन आते हैं। हर महीने सरकार किसानों के लिए कोई 'ऐतिहासिक' घोषणा करती है। प्रधानमंत्री अपने भाषणों में बार-बार किसान का जिक्र करते हैं और किसान की हालत सुधारने के लिए अपने काम गिनाते हैं। क्या पहले किसी सरकार ने किसानों पर इतना ध्यान दिया था? क्या और कोई प्रधानमंत्री हुआ है जिसे किसानों की इतनी चिंता थी? ऐसे प्रधानमंत्री और उनकी सरकार को किसान-विरोधी बताना कहां तक उचित है?

किसी **सरकार का मूल्यांकन उसके नाम से नहीं उसके काम से होना चाहिए।** आजकल विज्ञापन का युग है। अकसर कंपनियां अपने घटिया माल को बेचने के लिए बड़े-बड़े और लुभावने विज्ञापन का इस्तेमाल करती हैं। समझदार लोग कहेंगे कि कोई भी माल सिर्फ विज्ञापन देखकर नहीं खरीदना चाहिए। हमें खुद माल की जांच करनी चाहिए और जिन लोगों ने उसका पहले प्रयोग किया है उनसे पूछना चाहिए। यही बात सरकार पर भी लागू होती है। आजकल सरकारों के विज्ञापन बड़े-बड़े विशेषज्ञ बनाते हैं। जो लोग साबुन, तेल, कपड़ा और मकान बेचने के विज्ञापन बनाते हैं वैसे ही लोग सरकारों के काम की बिक्री भी करते हैं। इन विशेषज्ञों का धंधा है झूठ को सच बताना, राई का पहाड़ बनाना, दिन को रात दिखाना।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 12

मोदी सरकार ने अपने कार्यकाल के पहले चार साल में कुल 4,343 करोड़ रुपए सिर्फ विज्ञापन पर खर्च किए हैं। कार्यकाल खत्म होने तक यह खर्च कम से कम 6,000 करोड़ रुपए हो जाएगा। अगर इतना पैसा बांट दिया जाए तो देश के हर गांव के हिस्से में एक लाख रुपये आ जाएंगे। अगर इस पैसे से 10 फुट ऊंचा फ्लैक्स बैनर लगाएं तो भारत की पूरी थल और जल सीमा उस विज्ञापन से ढक जाएगी! वैसे भी प्रधानमंत्री खुद प्रचार करने में बहुत माहिर हैं। इसमें वो सब प्रचार भी जोड़ दीजिए जो दिन-रात टीवी और अखबार बिना पैसा लिये समाचार के नाम पर करते हैं। इसलिए हमारा पहला काम होना चाहिए कि सरकार को उसके विज्ञापन और प्रचार से नहीं, उसके काम से आंकें, प्रचार पर यकीन करने के बजाय प्रमाण मांगें। **जहां ज्यादा प्रचार है, वहां हमें ज्यादा शक करना चाहिए, ज्यादा कड़ाई से प्रमाण मांगना चाहिए।**

इसमें कोई शक नहीं कि प्रधानमंत्री आजकल किसान के बारे में बहुत चिंता जता रहे हैं। सवाल यह है कि क्या प्रधानमंत्री शुरू से किसान के बारे में चिंतित रहे हैं या कि अब जाकर किसान के बारे में चिंता जताने पर मजबूर हुए हैं? प्रधानमंत्री को किसान की चिंता है या किसान के वोट की? प्रधानमंत्री को किसान की खुशहाली की चिंता है या सिर्फ अगला चुनाव जीतने की? पहली नजर में तो यही लगता है कि प्रधानमंत्री को गुजरात के चुनाव में धक्का लगने के बाद किसान के लिए चिंता पैदा हुई है। गुजरात में उनकी पार्टी चुनाव तो जीत गई, लेकिन ग्रामीण इलाकों में पिछड़ गई थी। उसके बाद उत्तर प्रदेश और राजस्थान में हुए लोकसभा उपचुनावों में भी बीजेपी को करारी हार का सामना करना पड़ा। तमाम जनमत सर्वेक्षण दिखा रहे हैं कि किसानों का असंतोष बीजेपी के लिए अगले चुनाव में भारी पड़ सकता है। 2017 के बाद से देश-भर में बड़े-बड़े किसान आंदोलन हुए हैं, जिन्होंने सरकार को खेती-किसानी के सवाल पर घेरा है। उसके बाद से ही मोदी सरकार ने किसान के सवाल पर बड़ी घोषणाएं शुरू कीं। सरकारी प्रचारतंत्र इस

काम में दिन-रात जुटा हुआ है। खुद प्रधानमंत्री रोज किसान का नाम जाप कर रहे हैं। कम से कम पहली नजर में सरकार की नीयत में खोट नजर आता है। दाल में कुछ काला दिखाई देता है।

> ***मोदी सरकार का विज्ञापन खर्च :*** *4,343 करोड़ का आंकड़ा जून 2014 से मार्च 2018 तक का है। सरकार के ब्यूरो ऑफ आउटरीच कम्युनिकेशन ने सूचना के अधिकार के तहत मुंबई के अनिल गलगली को यह सूचना दी। स्रोत : द हिन्दू, 14 मई 2018*

1.3 इसलिए विधिवत सत्यापन जरूरी है

इस सवाल पर सच और झूठ का फैसला सिर्फ सरकार का प्रचार देखकर या सिर्फ विरोधियों के आरोप सुनकर नहीं किया जा सकता। किसकी नीयत क्या है, इसका हम अनुमान ही लगा सकते हैं, जांच नहीं कर सकते। इसलिए इस सवाल पर सच-झूठ का फैसला करने के लिए जरूरी है कि हम सभी तथ्यों की व्यवस्थित रूप से जांच करें और उस आधार पर कोई अंतिम निष्कर्ष निकालें।

इस पुस्तिका में यही प्रयास किया गया है। अलग-अलग अध्याय में मोदी राज के दौरान किसान की अवस्था के बारे में सभी प्रमुख वादों और दावों, आरोपों और प्रत्यारोपों का सत्यापन किया गया है। अगले अध्याय में **हम भारतीय जनता पार्टी के 2014 के घोषणापत्र में किए गए वादों की समीक्षा करेंगे।** सबसे पहले घोषणापत्र के प्रमुख वादे गिनाए गए हैं। फिर पड़ताल की गई है कि इनमें से कौन से वादे किस हद तक पूरे किए गए। इनमें से सबसे प्रमुख वादे यानी किसान को लागत का डेढ़ गुना दाम दिलाने के वादे की विस्तार से जांच की गई है।

तीसरे अध्याय में वादों से आगे चलकर मोदी सरकार के कुछ प्रमुख दावों की जांच की गई है। यहां सिंचाई, फसल बीमा योजना, कृषि ऋण के साथ-साथ नीम कोटेड यूरिया, सॉयल हेल्थ कार्ड और ई-नैम जैसे दावों की प्रमाण सहित जांच की गई है।

चौथे अध्याय में हम देखेंगे कि क्या मोदी सरकार अपने कार्यकाल

में किसानों पर आए संकट के वक्त उनके काम आई? यहां हम तीन प्रमुख संकट की जांच करेंगे- राष्ट्रव्यापी सूखा, बाजार में भाव का गिरना और नोटबंदी। पांचवें अध्याय में हम इस सरकार पर लगे कुछ प्रमुख आरोपों की जांच करेंगे। आरोप यह है कि इस सरकार ने किसानों को फायदा पहुंचाना तो दूर, उन्हें बहुत नुकसान पहुंचाया है। यहां हम खेती की बढ़ती लागत, निर्यात में गिरावट, मनरेगा के संकुचन, पशुपालन पर धक्के, किसान की भूमि के अधिग्रहण, और आदिवासी किसान के वनाधिकार पर हमले जैसे आरोपों की जांच करेंगे।

छठे अध्याय में हम मोदी सरकार के सबसे प्रमुख नारे यानी किसानों की आमदनी डबल करने की समीक्षा करेंगे। सबसे पहले तो समझेंगे कि इस नारे का अर्थ क्या है, इसकी समीक्षा कैसे की जाए। फिर इस आधार पर सरकार ने जो कुछ किया है उसकी जांच करेंगे।

अंतिम दो अध्याय में हम बचे हुए दो प्रश्नों पर गौर करेंगे। सातवें अध्याय में हम पूछेंगे कि मोदी राज में किसान की दुर्दशा के लिए क्या वाकई मोदी सरकार ही जिम्मेवार थी? **यहां हम सरकार के पक्ष में दिए जाने वाले पांच प्रमुख तर्कों की जांच करेंगे।** अंतिम अध्याय में हम सरकार की नीति, उसकी नीयत और उसकी राजनीति का खुलासा करेंगे।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 15

अध्याय दो

चुनावी वादों का क्या हुआ?

2014 के लोकसभा चुनाव से पहले भारतीय जनता पार्टी किसानों में बहुत लोकप्रिय नहीं थी। उसके पुराने प्रभाव के इलाकों से बाहर किसान बीजेपी को शक की निगाह से देखते थे, उसे शहरी और व्यापारियों की पार्टी समझते थे। इसलिए 2014 के लोकसभा चुनाव में भारतीय जनता पार्टी ने अपने मेनिफेस्टो में किसानों से बढ़-चढ़ कर वादे किए थे। उस समय प्रधानमंत्री पद के दावेदार श्री नरेंद्र मोदी अपनी हर चुनावी सभा में किसानों को लेकर बीजेपी की योजनाओं के बारे में जमकर बोलते थे। आज पलटकर देखें तो ये सब वादे दो श्रेणियों में रखे जा सकते हैं। एक तो वो वादे हैं जिन्हें बीजेपी सत्ता में आने के बाद भूल गई है, या जिनसे मुकर गई है। दूसरी श्रेणी में वो वादे हैं जिन पर सरकार ने कुछ काम करने के दावे किए हैं। इस अध्याय में हम पहली श्रेणी के वादे का ब्योरा देंगे।

2.1 घोषणापत्र में किसानों से बड़े-बड़े वादे किये थे

बीजेपी के चुनावी घोषणापत्र में '**कृषि- विज्ञान, उत्पादकता और उसका पारितोषक**' शीर्षक से खेती के बारे में और किसानों से कई

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 16

वादे किए गए थे। 'कृषि विकास को उच्च प्राथमिकता' देने, 'किसानों की आय और ग्रामीण इलाकों के विकास' में वृद्धि के वादे के साथ-साथ बीजेपी ने देश के किसानों से कई छोटे-बड़े वादे किए थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण वादा था कि 'यह सुनिश्चित किया जाएगा कि लागत का 50 प्रतिशत लाभ हो।' बीजेपी की सभी चुनावी रैलियों में श्री नरेंद्र मोदी इस वादे का खासतौर पर जिक्र करते थे और किसान की तमाम लागत गिनाते हुए कहते थे कि उनकी सरकार इस पूरी लागत में 50 प्रतिशत जोड़कर न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करेगी।

बीजेपी के मेनिफेस्टो में किसानों से किए कुछ वादे तो सामान्य किस्म के थे, जो ज्यादातर मेनिफेस्टो में होते हैं। मसलन :

- कृषि और ग्रामीण विकास में सरकारी निवेश बढ़ाया जाएगा।
- सस्ते कृषि उपकरण और कर्ज उपलब्ध कराए जाएंगे।
- 60 साल से ज्यादा उम्र के छोटे और सीमांत किसानों और मजदूरों के लिए कल्याणकारी योजना बनाई जाएगी।
- कम पानी से सिंचाई करने वाली तकनीक को बढ़ावा दिया जाएगा।
- प्राकृतिक आपदाओं से किसानों को राहत दिलाने के लिए कृषि बीमा योजना लागू की जाएगी।
- ग्रामीण इलाकों में कर्ज की सीमा (बैंक ऋण की उपलब्धता) बढ़ाई जाएगी।
- बागवानी, फूलों की खेती, मछली पालन, मधुमक्खी पालन और मुर्गी पालन को बढ़ावा दिया जाएगा। रोजगार के अवसर बढ़ाए जाएंगे।

इनके अलावा बीजेपी के घोषणापत्र में निम्नलिखित कुछ नई और ठोस बातें भी कही गई थीं :

- देश की भू-संपदा को बचाने के लिए एक नेशनल लैंड यूज पॉलिसी (राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति) बनेगी, ताकि केवल गैर-कृषि भूमि का वैज्ञानिक तरीके से अधिग्रहण होगा।
- इस नीति को लागू करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर नेशनल लैंड यूज अथॉरिटी और राज्य स्तर पर लैंड यूज अथॉरिटी बनाई जाएगी।

- कृषि उपज मंडी समिति (एपीएमसी) के कानून में सुधार किया जाएगा।
- प्राकृतिक खेती और खाद को प्रोत्साहन देने के लिए ऑर्गेनिक फार्मिंग एंड फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन बैंक ऑफ इंडिया की स्थापना की जाएगी।
- एग्रो फूड प्रोसेसिंग क्लस्टर की स्थापना कर कृषि उत्पाद के सीधे निर्यात की व्यवस्था की जाएगी।
- मिट्टी का परीक्षण करने की प्रणाली का विकास किया जाएगा।
- मोबाइल मृदा परीक्षण प्रयोगशालाएं चलाई जाएंगी।
- ज्यादा उपज देने वाले बीज मुहैया कराए जाएंगे।
- हर जिले में बीज कल्चर लैब बनाई जाएगी।
- मछली पालन को बढ़ावा दिया जाएगा। मछुआरों के कल्याण के कदम उठाए जाएंगे।
- जीएम खाद्य पदार्थों को बिना वैज्ञानिक जांच-पड़ताल के अनुमति नहीं दी जाएगी।

*सन्दर्भः **बीजेपी का चुनाव मैनिफेस्टो हिंदी** में ऑनलाइन उपलब्ध है। इस कृषि संबंधी हिस्से को पृष्ठ 44 से 46 तक देख सकते हैं http://www.bjp.org/hi/documents/vision—document/manifesto—2014/manifesto—2014—hi*

2.2 अनेक वादे जो सरकार भूल गई

सबसे पहले हम इन कुछ ठोस वादों की जांच कर लें।

■ **राष्ट्रीय लैंड यूज अथॉरिटी बनाने की दिशा में एक कदम भी नहीं उठाया गया।** आज भी ग्रामीण विकास मंत्रालय के भू-संसाधन विभाग की वेबसाइट पर 2013 का एक पुराना ड्राफ्ट पड़ा हुआ है। जाहिर है, जब नीति ही नहीं बनी तो अथॉरिटी कैसे बनती। यह मामला सिर्फ एक सरकारी दस्तावेज और संस्था का नहीं था। यह कोई संयोगवश हुई भूल नहीं थी। यह महत्वपूर्ण चुनावी वादा कृषियोग्य भूमि के अवांछित अधिग्रहण से ताल्लुक रखता था। अगर भूमि के उपयोग के बारे में एक राष्ट्रीय नीति होती और उसे लागू करने वाली संस्था (अथॉरिटी) होती तो विकास के नाम पर किसान के विनाश की

योजनाओं से उसे बचाया जा सकता था। लेकिन इस सरकार की ऐसी कोई मंशा नहीं थी। इस सरकार ने उपजाऊ जमीन का अधिग्रहण पहले से भी ज्यादा जोर-शोर से किया।

■ **कृषि उपज मंडी समिति (एपीएमसी) कानून के किसान विरोधी हिस्सों में आज भी कोई प्रभावी बदलाव नहीं हुआ है।** खानापूर्ति के लिए केंद्र सरकार ने 2017 में एक मॉडल कानून 'कृषि उत्पाद एवं पशुधन विपणन (संवर्द्धन एवं संयोजन) विधेयक' प्रकाशित कर दिया। लेकिन इस विषय में केंद्र सरकार को कानून बनाने का अधिकार नहीं है। यह विधेयक तभी कानून बनेगा अगर राज्य सरकारें इसे स्वीकार करें। बीजेपी दिन-रात 20 राज्यों में अपनी सरकार होने का ढिंढोरा पीटती है। प्रधानमंत्री आए दिन कहते हैं कि केंद्र और राज्य सरकार एक ही पार्टी की हो तो विकास होगा। लेकिन अब तक बीजेपी सरकारों सहित किसी भी राज्य सरकार ने इस मॉडल कानून को लागू नहीं किया है। वैसे केंद्र सरकार द्वारा बनाए मॉडल कानून में भी किसान के पक्ष में यह न्यूनतम प्रावधान तक नहीं है कि मंडी में सरकार द्वारा तय न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम पर कोई भी उपज न बेची जाए।

■ **बुजुर्ग किसानों और खेतिहर मजदूरों को बुढ़ापे में सहारा देने के लिए कोई प्रभावी कल्याण योजना नहीं बनाई गई है।** बुढ़ापा पेंशन की एक पुरानी योजना चली आ रही थी। इस योजना में बीपीएल कार्ड वाले (गरीबी रेखा से नीचे) परिवारों में बुजुर्गों को पेंशन में केंद्र सरकार हर महीने 200 रुपये का अंशदान करती है। **मोदी सरकार ने 2006 से चली आ रही इस नाममात्र की राशि में बढ़ोत्तरी भी नहीं की।** किसानों और असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की पेंशन की खानापूर्ति के लिए सरकार ने 'अटल पेंशन योजना' की घोषणा तो कर दी, लेकिन यह कोई नई योजना नहीं है। इससे पहले यूपीए के राज में ऐसी ही एक कागजी 'स्वावलंबन योजना' चला करती थी। इस सरकार ने बस उसका नाम बदल दिया और उसमें कुछ छिटपुट संशोधन कर दिए। सही कहें

तो इसे पेंशन योजना भी नहीं कहना चाहिए। दरअसल, यह बचत और बीमा या भविष्य निधि जैसी एक योजना है। कोई भी व्यक्ति अगर 40 साल तक हर महीने 100 रुपया जमा करेगा तो उसे 60 साल पार होने के बाद हजार रुपये महीने के हिसाब से 'पेंशन' मिलेगी। यह तो किसान को उसकी ही बचत में मामूली-सा सरकारी अंशदान डालकर वापस लौटाने की योजना है। किसान संगठनों और असंगठित क्षेत्र के मजदूर संगठनों की मांग यह है कि साठ साल की उम्र पार होने के बाद हर किसान-मजदूर को बिना किसी शर्त के 3000 रुपये प्रतिमाह पेंशन दी जाए। यह राशि न्यूनतम मजदूरी के आधे के हिसाब से तय की गई है। लेकिन मोदी सरकार ने इस मांग पर विचार करना भी उचित नहीं समझा। जब देश-भर से हजारों किसान-मजदूर 'पेंशन परिषद' के बुलावे पर 1-2 अक्टूबर 2018 को दिल्ली पहुंचे तो मोदी सरकार के किसी प्रतिनिधि ने उनसे बात तक नहीं की।

■ **आर्गेनिक फार्मिंग एंड फर्टिलाइजर कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया का नामोनिशान भी नहीं है।** आज भी प्राकृतिक खेती के नाम पर चल रहा पुराना सरकारी ढांचा बदस्तूर जारी है। बेशक, इस सरकार ने प्राकृतिक खेती को प्रोत्साहन देने के लिए एक सही शुरुआत की थी। 'परंपरागत कृषि विकास योजना' के नाम से प्राकृतिक खेती के लिए बजट में पहले से अधिक फंड आवंटित किए गए थे। लेकिन जहां इस मद से कम से कम 1,000 करोड़ रुपये की जरूरत थी, वहां सरकार ने हर साल बजट में लगभग 350 करोड़ की ही घोषणा की। उससे भी ज्यादा निराशा की बात यह थी कि वास्तविक खर्चा बजट की घोषणा से बहुत कम हुआ। 2015-16 में 189 करोड़ खर्च हुआ, 2016-17 में सिर्फ 71 करोड़ तो 2017-18 में उससे भी कम। इसमें कोई शक नहीं कि पिछले चार साल में प्राकृतिक खेती का रकबा तेजी से बढ़ा है, लेकिन यहां भी वास्तविक प्रगति सरकारी दावों से बहुत कम है। 'मैनेज' संस्था द्वारा किए मूल्यांकन के अनुसार, सरकारी दावे के 62 फीसदी क्लस्टर ही बन पाए हैं। सच यह है कि प्राकृतिक खेती को

बढ़ावा देने के लिए जिस व्यवस्थित और संस्थागत प्रयास की जरूरत थी, वह आज भी दिखाई नहीं दे रहा है।

अन्य कई वादे जैसे मृदा परीक्षण के आधार पर फसलों का चयन, बीज परीक्षण लैब, कृषि में जैव विविधता के संरक्षण के लिए बीजशाला और नवाचारशाला जैसे प्रस्ताव आज भी धरे के धरे हैं। मृदा परीक्षण के कार्ड बने हैं, जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे। लेकिन उनका फसल चयन और जैव विविधता से कोई लेना-देना नहीं है।

*सन्दर्भः **राष्ट्रीय भूमि उपयोग नीति का मसविदा** 'The draft National Land Utilisation Policy: framework for land use planning & management', Department of Land Resources, Ministry of Rural Development, Government of India, July 2013'। मॉडल कृषि उपज सहकारिता मंडी के कानून को इस लिंक पर देखें http://agricoop.nic.in/sites/default/files/APLM_ACT_2017_1.pdf । परंपरागत कृषि विकास योजना का मूल्यांकन इस रिपोर्ट में किया गया है : http://www.manage.gov.in/publications/reports/pkvy.pdf । अटल पेंशन योजना के मूल्यांकन के लिए पढ़ें Sant Lal Arora and Amitabh Kundu, "Atal Pension Yojana: A Critical Appraisal", Economic & Political Weekly, May 12, 2018, pp. 57—61.*

2.3 लागत के डेढ़ गुना दाम के वादे से सरकार मुकर गई

मोदी सरकार का मूल्यांकन घोषणापत्र के छोटे-मोटे वादों के बजाय सबसे बड़े वादे के आधार पर करना न्यायोचित होगा। 2014 के चुनाव में **बीजेपी का प्रमुख वादा यह था कि किसान को घाटे की खेती के कुचक्र से बचाया जाएगा और उसे खेती की पूरी लागत पर कम से कम 50 प्रतिशत मुनाफा सुनिश्चित करवाया जाएगा। लागत से डेढ़ गुना दाम का यह फार्मूला अचानक बीजेपी के मन में नहीं आ गया था। इसके पीछे स्वामीनाथन आयोग की सिफारिश थी।** सन 2004 में तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने कृषि वैज्ञानिक एम. एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में राष्ट्रीय कृषि आयोग बनाया था। इस आयोग ने सन 2006 में अपनी अंतिम रिपोर्ट सरकार को सौंप दी थी। इस रिपोर्ट की एक प्रमुख सिफारिश यह थी कि अगर किसानी को घाटे का धंधा होने से बचाना है तो किसान को उसकी संपूर्ण लागत का डेढ़ गुना दाम सुनिश्चित करवाना होगा। यह सिफारिश देख कर तत्कालीन कांग्रेस सरकार को सांप सूंघ गया और उसने आठ साल तक इस सवाल पर

चुप्पी साधे रखी। किसान आंदोलन और बीजेपी के नेता कांग्रेस की इस चुप्पी के लिए उसे किसान विरोधी ठहराते थे। बीजेपी के किसान संगठन भी स्वामीनाथन आयोग की इस सिफारिश को लागू करने की रट लगाए रखते थे। अपनी चुनावी सभाओं में श्री नरेंद्र मोदी ने बार-बार किसानों को भरोसा दिलाया कि वे किसानों की इस ऐतिहासिक मांग और जरूरत को पूरा करेंगे।

यहां एक मिनट रुक कर यह समझना जरूरी है कि वह लागत क्या है जिसके डेढ़ गुना दाम की मांग की जा रही है। फसल में किसान की क्या लागत है, इसे मापने के तीन अलग-अलग पैमाने हो सकते हैं। पहला बिलकुल न्यूनतम पैमाना है, जिसमें सिर्फ वही लागत शामिल होती है, जो किसान नकद अपनी जेब से खर्च करता है। बीज, खाद, कीटनाशक, पानी, बिजली और गुड़ाई, बुवाई, कटाई पर लगी मजदूरी जैसे तमाम खर्च को शामिल कर लिया जाए तो उससे न्यूनतम लागत निकलती है। सरकारी भाषा में इसे **ए-2 लागत** कहते हैं। इस न्यूनतम लागत में किसान और उसके परिवार की अपनी मेहनत-मजदूरी शामिल नहीं है। अगर इस मद में अनुमान से कुछ राशि जोड़ दें तो इसे आंशिक लागत कह सकते हैं। सरकारी भाषा में इसे **ए-2+एफएल** लागत कहते हैं।

लेकिन लागत निकालने के इन दोनों तरीकों में सबसे महत्वपूर्ण मद शामिल नहीं होती, यानी किसान की अपनी जमीन का किराया और उसके अपने पूंजी निवेश का ब्याज। जब कोई दुकानदार या उद्योपगति अपनी लागत का हिसाब करता है, तो अपनी दुकान या फैक्टरी का किराया जोड़ता है, चाहे उसको किराया देना न पड़ता हो। जाहिर है, अगर कोई किसान अपनी जमीन ठेके पर नहीं देता है तो जो पैसा उसे किराये में मिल सकता था, वह उसकी लागत है। इसी तरह उसने ट्रैक्टर, पम्पसेट, ट्यूबवेल में जो पूंजी लगाई है, उसका ब्याज और उसका सालाना मूल्य-ह्रास (डेप्रीसिएशन) भी उसकी लागत है। इन दोनों को जोड़ने पर किसान की फसल की संपूर्ण लागत निकलती है। सरकारी भाषा में इसे **सी-2 लागत** कहते हैं। **स्वामीनाथन आयोग ने इस संपूर्ण**

या सी-2 लागत पर डेढ़ गुना दाम की सिफारिश की थी। किसान आंदोलन भी 2006 से लगातार सी-2 लागत के कम से कम डेढ़ गुना दाम की मांग कर रहे हैं। बीजेपी के नेता भी यही मांग करते थे। इसलिए बीजेपी के मेनिफेस्टो और श्री नरेंद्र मोदी के वादे को इसी रोशनी में देखा जाना चाहिए।

मोदी सरकार इस वादे को पूरा करने के बजाय ठीक उलटा काम करने में लगी रही है। सत्ता में आते ही खरीफ की फसल की बिक्री के समय मोदी सरकार ने एमएसपी (न्यूनतम समर्थन मूल्य) घटाने की भरसक कोशिश की। उस समय कई राज्य सरकारें केंद्र सरकार द्वारा घोषित एमएसपी पर किसानों को अपने बजट से कुछ बोनस भी देती थीं। **मोदी सरकार ने आते ही फरमान जारी किया कि राज्य सरकारें किसानों को बोनस देना बंद करें, नहीं तो केंद्र सरकार उन राज्यों से धान की खरीद नहीं करेगी। कई सरकारों को बोनस बंद करना पड़ा।**

फरवरी 2015 में मोदी सरकार ने एक कदम और आगे बढ़कर साफ कह दिया कि वह लागत का डेढ़ गुना एमएसपी नहीं देगी। चुनाव के तुरंत बाद एक किसान संगठन 'कन्सोर्शियम ऑफ इंडियन फार्मर्स एसोसिएशन' ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर करके यह मांग की थी कि सरकार को स्वामीनाथन आयोग की सिफारिश के मुताबिक लागत का डेढ़ गुना दाम देने के लिए बाध्य किया जाए। जब केंद्र सरकार से जवाब मांगा गया तो उसने कृषि मंत्रालय के संयुक्त सचिव की मार्फत एक हलफनामा दायर किया, जिसमें साफ-साफ लिखा था : ''न्यूनतम समर्थन मूल्य की सिफारिश कृषि लागत एवं मूल्य आयोग द्वारा वस्तुपरक कसौटियों के आधार पर और अनेक बिंदुओं पर गौर करने के बाद की जाती है। इसलिए इसे लागत का कम से कम 50 प्रतिशत तक बढ़ा देने से बाजार के विकृत होने की संभावना है।'' यानी कि **बीजेपी अपने लिखित चुनावी वादे से साफ-साफ मुकर गई, यह कहते हुए कि अगर किसान को लागत का डेढ़ गुना दाम दे दिया तो बाजार को नुकसान होने का डर है! जाहिर है, सरकार को किसान से ज्यादा चिंता व्यापारी की थी।** यहां गौरतलब है कि सरकार सी-2

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 23

लागत या ए-2+एफएल लागत की बात नहीं कर रही थी। मोदी सरकार देश की सर्वोच्च अदालत में हलफनामा देकर कह रही थी कि किसी भी पैमाने से किसानों को लागत से डेढ़ गुना दाम देना संभव नहीं है!

पहले चार साल तक केंद्र सरकार ने एमएसपी में सालाना वृद्धि करते समय अपनी मुट्ठी कस के बंद रखी। सी-2 लागत पर डेढ़ गुना एमएसपी देना तो दूर, मोदी सरकार ने कई फसलों पर सी-2 लागत के बराबर भी एमएसपी घोषित नहीं किया। ज्वार, रागी, तिल, सूरजमुखी, मूंग जैसी सात फसलों की सरकार द्वारा अनुमानित सी-2 लागत अधिक थी और सरकार द्वारा घोषित एमएसपी कम। यानी सरकार जान-बूझ कर किसान को घाटे की खेती के लिए मजबूर कर रही थी। किसानों की वाजिब एमएसपी की मांग को यूपीए सरकार द्वारा दबाए रखने के सिलसिले को पलटना तो दूर, मोदी सरकार ने फसलों का दाम इतना भी नहीं बढ़ाया, जितना पिछली सरकार के जमाने में बढ़ाया गया था। यूपीए के राज में 2009 से 2014 तक धान की फसल में किसान को सी-2 लागत पर 23 प्रतिशत बचत थी, जबकि मोदी सरकार के पहले चार साल में सिर्फ छह प्रतिशत। कपास में पिछले राज में 30 प्रतिशत बचत थी, मोदी सरकार में 2 प्रतिशत, गेहूं में पहले 36 प्रतिशत तो अब 32 प्रतिशत और सरसों में पहले 36 प्रतिशत तो अब 29 प्रतिशत बचत थी। तुअर (अरहर) दाल और मसूर दाल को छोड़कर हर फसल में मोदी सरकार के तहत पहले चार साल में किसान को पिछली सरकार की तुलना में भी कम एमएसपी की बढ़ोत्तरी मिली। किसी भी एक फसल में किसी भी एक साल में केंद्र सरकार ने संपूर्ण लागत (सी-2) पर डेढ़ गुना एमएसपी नहीं दी। अगर आंशिक लागत (ए-2+एफएल) के आधार पर देखें तो मोदी सरकार ने सिर्फ छह फसलों (अरहर/तुअर, गेहूं, जौ, चना, मसूर और सरसों) में इस आंशिक लागत का डेढ़ गुना एमएसपी दिया। यूपीए के राज में कुल 11 फसलों, यानी इन छह के अलावा पांच और फसलों (धान, बाजरा, उड़द, सोयाबीन, कपास) पर भी आंशिक लागत पर 50 फीसदी से ज्यादा एमएसपी दिया गया था। कुल मिलाकर **पहले चार साल में मोदी**

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 24

सरकार ने यूपीए सरकार से बेहतर दाम देने के बजाय उससे भी कमतर दाम किसानों को दिए।

जाहिर है, देश-भर के किसान बेहद नाराज थे। खुद बीजेपी और संघ परिवार के किसान संगठनों को भी शर्म के मारे सरकार की आलोचना करनी पड़ी। ऐसे में सरकार ने एक और पैंतरा खेला। 19 जुलाई 2017 को केंद्रीय कृषिमंत्री श्री राधामोहन सिंह ने लोकसभा में हुई बहस में यह दावा किया कि बीजेपी ने लागत का डेढ़ गुना न्यूनतम समर्थन मूल्य देने का कभी वादा ही नहीं किया था! उन्होंने बाल की खाल उधेड़ते हुए कहा कि बीजेपी के घोषणापत्र में लागत का डेढ़ गुना दाम देने की बात थी, लेकिन घोषणापत्र में कहीं भी एमएसपी यानी न्यूनतम समर्थन मूल्य का जिक्र नहीं था। किसान संगठनों ने इस झूठ का पर्दाफाश करते हुए श्री नरेंद्र मोदी के वे वीडियो जारी कर दिए, जिनमें 2014 की चुनावी सभाओं में वे किसानों को लागत का डेढ़ गुना एमएसपी देने का वादा कर रहे थे। किसान संगठन एमएसपी का सवाल बार-बार उठा रहे थे और यह मोदी सरकार के लिए भारी होता जा रहा था। गुजरात के चुनाव में हारते-हारते बचने के बाद मोदी सरकार को समझ आ गया कि लागत का डेढ़ गुना दाम देने के अपने वादे पर आंख मूंदने से काम नहीं चलेगा।

__सन्दर्भः पुस्तक में जहां-जहां कृषि उत्पाद की लागत__ और न्यूनतम समर्थन मूल्य का जिक्र किया गया है वहां उसके आंकड़ें कृषि उत्पाद लागत और मूल्य आयोग (CACP) की रिपोर्ट से लिए गए हैं। यह रिपोर्ट हर साल खरीफ और रबी की बुवाई के समय प्रकाशित होती है और अंग्रेजी तथा हिंदी दोनों में उपलब्ध होती है। सभी रिपोर्ट https://cacp.dacnet.nic.in/ पर उपलब्ध हैं।

मोदी सरकार द्वारा बोनस पर पाबंदी लगाने की खबर के लिए देखें "Bonus on MSP faces Centrels Heat", Business Standard, 27 June 2014। केंद्र सरकार द्वारा सुप्रीम कोर्ट में दिए हलफनामे की खबर के लिए देखें "Minimum support price cannot be 50 % more than cost of produce: Centre to SC" Times of India, 21 February 2015। कृषि मंत्री द्वारा संसद में दिया बयान लोक सभा की 19 जुलाई 2017 की कार्यवाई में दर्ज है। श्री नरेंद्र मोदी द्वारा चुनाव प्रचार के समय भाषण में एमएसपी का स्पष्ट वादा देखने के लिए यूट्यूब वीडियो देखिये www.youtube.com/watch?v=ickoA1UguoU|;wih, ls de leFkZu, मूल्य nsus ds ckjs esa देखें% "Green paper on farm, farming and rural economy" जिसका लिंक है: http://www.kisanswaraj.in/2018/01/30/green—paper—on—farmers—farming—rural—economy—2018/

2.4 वादा निभाने की जगह लागत की परिभाषा पलट दी

इस राजनैतिक संकट से बचने के लिए मोदी सरकार ने एक नई चाल चली। इस सरकार का अंतिम बजट पेश करते हुए वित्तमंत्री अरुण जेटली

ने 1 फरवरी 2018 को यह घोषणा की : ''हमारे दल के घोषणापत्र में यह संकल्प है कि कृषि को लाभकारी बनाने के लिए किसान भाइयों को उनके उत्पादन की लागत से कम से कम 50 प्रतिशत अधिक अर्थात लागत से डेढ़ गुना दाम मिले।...मुझे यह घोषणा करते हुए अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि तय किए हुए सिद्धांत के अनुसार, सरकार ने आगामी खरीफ से सभी अधिघोषित फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य उत्पादन-लागत से कम से कम डेढ़ गुना करने का फैसला लिया है।'' साथ ही यह घोषणा भी की गई कि नीति आयोग फसल-खरीद की नई व्यवस्था सुझाएगा।

इस घोषणा का जमकर प्रचार हुआ। शाम होते-होते टीवी पर ऐसा माहौल बना दिया गया मानो किसानों ने जो कुछ मांगा था, उन्हें मिल गया है। बजट-घोषणा के पांच महीने बाद जब 4 जुलाई 2018 को सरकार ने खरीफ की फसलों का एमएसपी घोषित किया, तो एक बार फिर यही प्रचार हुआ। पहले चार साल तक अपने चुनावी वादे पर आंख मूंदने और उससे साफ मुकर जाने वाली मोदी सरकार ने अब कहना शुरू किया कि उसने अपना चुनावी वादा पूरा कर दिया है और किसानों की फसलों के दामों में ऐतिहासिक वृद्धि हुई है। इसी घोषणा का तीसरी बार प्रचार सितंबर माह में हुआ, जब सरकारी खरीद की योजना आई। बीजेपी के कुछ बड़बोले नेता तो यहां तक कहने लगे कि जो काम चौधरी चरण सिंह और ताऊ देवीलाल नहीं कर सके, वह काम मोदी जी ने कर दिखाया है।

सच्चाई इस दावे से बिलकुल विपरीत थी। दरअसल, बजट में घोषणा करते समय श्री अरुण जेटली ने चालाकी से लागत की परिभाषा ही बदल दी थी। जैसा कि हमने पहले जिक्र किया है, स्वामीनाथन आयोग, किसान आंदोलन और खुद बीजेपी के किसान संगठन संपूर्ण लागत यानी सी-2 पर डेढ़ गुना दाम की मांग कर रहे थे। उसे पूरा करने के बजाय **मोदी सरकार ने आंशिक लागत यानी ए-2+एफएल के डेढ़ गुना एमएसपी की घोषणा की थी।** यह कोई मामूली या बारीक अंतर नहीं था। धान के उदाहरण से हम इसे समझ सकते हैं। सरकार के 'कृषि लागत एवं मूल्य आयोग' के अनुसार 2018 में धान की आंशिक लागत (ए-2+एफएल) थी 1,166

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 26

रुपये प्रति क्विंटल। लेकिन अगर जमीन का किराया और पूंजी निवेश की कीमत जोड़कर संपूर्ण लागत (सी-2) का हिसाब करें तो आयोग के अनुसार यह 1,560 रुपये प्रति क्विंटल है। यानी कि **अगर संपूर्ण लागत पर डेढ़ गुना एमएसपी मिलता तो किसान को धान की फसल का 2340 रुपए प्रति क्विंटल एमएसपी मिलना चाहिए था। लेकिन आंशिक लागत के आधार पर सरकार ने सिर्फ 1750 रुपए प्रति क्विंटल घोषित किया।** यानी

तालिका 1 : किसान की लूट का हिसाब (आंशिक व संपूर्ण लागत और उचित एमएसपी व सरकारी एमएसपी की तुलना, खरीफ-2018-19)

फसल	आंशिक (ए-2+एफएल) लागत	संपूर्ण (सी-2) लागत	उचित एमएसपी (सी-2+50%)	सरकार द्वारा घोषित एमएसपी	किसान की लूट (उचित -घोषित)
धान	1,166	1,560	2,340	1750	590
बाजरा	990	1,324	1,986	1950	36
ज्वार	1,619	2,183	3,275	2,430	845
मक्का	1,131	1,480	2,220	1,700	520
मूंग	4,650	6,161	9,242	6,975	2,267
सोयाबीन	2,266	2,972	4,458	3,399	1,059
उड़द	3,438	4,989	7,484	5,600	1,884
मूंगफली	3,260	4,186	6,279	4,890	1,389
रागी	1,931	2,370	3,555	2,897	658
अरहर/तूर	3,432	4,981	7,472	5,675	1,797
तिल	4,166	6,053	9,080	6,249	2,831
सूरजमुखी	3,592	4,501	6,752	5,388	1,364
कपास	3,433	4,514	6,771	5,150	1,621

स्रोत : कृषि लागत और मूल्य आयोग (कृषि मंत्रालय, भारत सरकार), खरीफ फसलों की मूल्य नीति, विपणन मौसम, 2018-19

कि लागत की परिभाषा बदलने की इस हेराफेरी के चलते किसान को धान में हर क्विंटल पर 590 रु. का घाटा हुआ। एक तो किसान के हक पर डंडी मारी और दूसरा यह दावा किया कि उसकी सभी मांगें मान ली गई हैं।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 27

तालिका 1 में हम देख सकते हैं कि हर फसल में यही हेराफेरी की गई। मक्का में किसान को हर क्विंटल पर 520 रुपए का नुकसान हुआ, ज्वार में 845 रुपए का नुकसान हुआ, सोयाबीन में 1,059 रुपए का, मूंगफली में 1,389 रुपए का, अरहर दाल में 1,797 रुपए का, मूंग में 2,267 रुपए का और तिल में 2,831 रुपए का घाटा हुआ। इतने बड़े घाटे के बावजूद किसानों से कहा जा रहा था कि वे इस घोषणा का जश्न मनाएं! इसे कहते हैं चोरी और सीनाजोरी! स्वाभाविक ही किसान संगठनों ने इस घोषणा को किसानों के साथ ऐतिहासिक धोखा करार दिया।

सरकार ने यह दावा किया कि आज तक किसी भी सरकार ने एक साल में एमएसपी में इतनी वृद्धि नहीं की थी। इस सरकार के तमाम दावों की तरह यह दावा भी झूठा निकला। सच यह है कि चुनाव से पहले वाले साल में एमएसपी को बढ़ाकर किसान हितैषी दिखने के इस प्रयास में कोई नई बात नहीं थी। **अगर आंकड़ों की दृष्टि से देखें तो सन 2008 में मनमोहन सिंह की सरकार द्वारा की गई बढ़ोत्तरी हर फसल में मोदी सरकार की 2018 की बढ़ोत्तरी से ज्यादा थी।** मोदी सरकार ने इस साल धान का एमएसपी 1550 रुपए से बढ़ाकर 1750 रुपए कर दिया, यानी एक साल में 13 फीसदी बढ़ोत्तरी की। उधर मनमोहन सिंह सरकार ने 2008-09 में धान का एमएसपी 645 रुपए से बढ़ाकर 1000 रुपए किया था, यानी 65 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की थी। इसी तरह बाजरा में 2018 में 37 प्रतिशत बढ़ोत्तरी की घोषणा हुई है, लेकिन 2008 में 71 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई थी। ज्वार में इस बार 43 प्रतिशत तो पिछली सरकार में 71 प्रतिशत, मक्का में इस बार 19 प्रतिशत तो पिछली सरकार में 74 प्रतिशत, अरहर में इस बार 4 प्रतिशत तो पहले 62 प्रतिशत, उड़द में इस बार 4 प्रतिशत तो पहले 81 प्रतिशत, सोयाबीन में इस बार 11 प्रतिशत तो पहले 76 प्रतिशत और कपास में इस बार 26 प्रतिशत तो दस साल पहले 68 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई थी। यानी कि **एमएसपी में ऐतिहासिक वृद्धि का दावा सरासर झूठ है।**

तालिका 2 में इस झूठ का व्यवस्थित रूप से भंडाफोड़ किया गया है। यहां हम केवल दो सरकारों द्वारा एक साल में की गई वृद्धि की

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 28

तालिका-2 : एमएसपी वृद्धि का झूठ (चार सरकारों द्वारा मुख्य फसलों के एमएसपी में प्रतिशत वृद्धि की तुलना, 1999-2018)

फसल	एनडीए सरकार (1999-2009) (वाजपेयी)	यूपीए सरकार-I 2004-08 (मनमोहन)	यूपीए सरकार-II 2009-2013 (मनमोहन)	एनडीए सरकार 2014-2018 (मोदी)
धान	18%	79%	31%	29%
ज्वार	23%	63%	79%	59%
तूर/अरहर	24%	44%	87%	30%
कपास	11%	42%	48%	37%
सोयाबीन	24%	39%	84%	33%
मूंग	25%	79%	63%	52%

नोट : इस तालिका में पिछली चार सरकारों द्वारा उनके संपूर्ण 5 साल के कार्यकाल के दौरान प्रमुख फसलों के एमएसपी में बढ़ोत्तरी की तुलना की गई है। सरकार बनने के समय संबंधित फसल के एमएसपी को आधार मानकर पांचवें वर्ष में घोषित एमएसपी में वृद्धि को प्रतिशत में व्यक्त किया गया है।

स्रोत : कृषि और मूल्य आयोग की रिपोर्ट पर आधारित

तुलना करने के बजाय पिछली चारों सरकारों (वाजपेयी की एनडीए, मनमोहन सिंह की यूपीए-1 और यूपीए-2 तथा मोदी की एनडीए सरकार) द्वारा पूरे पांच साल में एमएसपी में वृद्धि की तुलना कर सकते हैं। यहां एक भी फसल ऐसी नहीं है जिसमें मोदी राज में सबसे ज्यादा वृद्धि हुई हो। धान और मूंग का एमएसपी यूपीए-1 के दौरान सबसे ज्यादा बढ़ा तो बाकी सारी फसलों के सरकारी भाव यूपीए-2 के दौरान सबसे ज्यादा बढ़े। इस मामले में वाजपेयी की एनडीए सरकार सबसे कमजोर थी। मोदी सरकार उससे बेहतर थी, लेकिन यूपीए की दोनों सरकारों से पीछे रही।

***सन्दर्भः बजट में वित्तमंत्री** के लागत का डेढ़ गुना दाम देने के दावे का मूल्यांकन करता यह लेख देखें: Kabir Agarwal, "Fact Check: Has the BJP Really Fulfilled Its MSP Promise as It Claims?", The Wire, 6 July 2018. । पिछली यूपीए सरकार और मोदी सरकार के द्वारा घोषित की गई एमएसपी की तुलना के लिए देखें: Abhishek Waghmare, "MSPs under UPA govt rose faster than under NDA regime for kharif crops", Business Standard, 5 July 2018.*

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 29

2.5 प्रधानमंत्री 'आशा' के बदले मिली निराशा

सच तो यह है कि किसान को मोदी सरकार द्वारा घोषित यह आधा-अधूरा एमएसपी मिलने की भी कोई गारंटी नहीं है। सरकार खरीफ के मौसम में 14 फसलों का एमएसपी घोषित करती है। लेकिन अकसर सरकार खरीद सिर्फ धान की करती है। अगर किसानों का ज्यादा दबाव पड़े तो थोड़ा-बहुत बाजरा और कपास की खरीद भी कर लेती है। **सच यह है कि देश के अधिकांश इलाकों में एमएसपी तो सिर्फ एक कागजी घोषणा है। सरकार ने ऐसी कोई व्यवस्था ही नहीं की है कि अगर बाजार भाव एमएसपी से नीचे जाए तो सरकार किसान की फसल की खरीद करेगी।**

इस कड़वी सच्चाई को स्वीकार करते हुए सरकार ने सितंबर 2018 में सरकारी खरीद की नई नीति की घोषणा की। प्रधानमंत्री प्रचार और नामकरण के उस्ताद हैं। इस नीति को भी नाम दिया 'प्रधानमंत्री आशा' (प्रधानमंत्री अन्नदाता आम सुरक्षा अभियान)। लेकिन गौर से देखेंगे तो इस 'आशा' में केवल निराशा ही थी। याद रहे कि सरकारी खरीद की नई नीति बनाने का एलान फरवरी 2018 के बजट भाषण में किया गया था। उसके बाद रबी की फसलें बिक गईं और सितंबर 2018 में जब खरीफ की फसलें बाजार में आनी शुरू हुईं तब जाकर सरकार ने खरीद की नई नीति का एलान किया। सात महीने भी लिये और कुछ हासिल भी नहीं हुआ।

प्रधानमंत्री आशा योजना के अनुसार अब सरकारी खरीद तीन में से किसी एक तरीके से होगी। पहला तो पुराना सरकारी खरीद का तरीका है। इस योजना के तहत सरकार राशन की दुकान में बांटने के लिए अनाज खरीदती है। या फिर मूल्य समर्थन योजना के तहत जहां भी किसी फसल का बाजार-भाव न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे गिर जाता है तो सरकार उस फसल की खरीद शुरू करती है। यानी कि सात महीने सोचने के बाद सरकार ने तय किया कि हमेशा की तरह इस साल भी मुख्यतः यही पुराना तरीका इस्तेमाल किया जाएगा।

बदलाव सिर्फ यह है कि सरकार ने अपने बजट में किए मजाक का

सुधार करते हुए इस खरीद के लिए सिर्फ 200 करोड़ रुपए के बजाय अब लगभग 16,000 करोड़ रुपए देने का फैसला किया है। साथ में यह घोषणा भी की है कि सरकारी खरीद करने वाली एजेंसियां अब बैंकों से 45,000 करोड़ रुपए का लोन उठा सकेंगी। लेकिन इसमें सरकार ने सिर्फ गारंटी दी है, अपनी जेब से कुछ नहीं डाला है।

वास्तव में यह राशि भी ऊंट के मुंह में जीरा है, क्योंकि **अगर सरकार सभी फसलों को न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदने के बारे में गंभीर थी तो उसे कम से कम डेढ़ से दो लाख करोड़ रुपए का इंतजाम करना चाहिए था।** पहले की तरह इस बार भी केंद्र सरकार किसी भी फसल के कुल उत्पादन का सिर्फ 25 फीसदी खरीदने में ही राज्य सरकार का सहयोग करेगी। बाकी 75 फीसदी खरीदना राज्य सरकार का सरदर्द बना रहेगा। जाहिर है, न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी। न राज्य सरकारों के पास पैसा होगा न किसान की फसल की पूरी खरीद की जाएगी।

इसके अलावा केंद्र सरकार ने प्रयोग के तौर पर दो अलग तरीकों की भी घोषणा की। लेकिन इन दोनों से किसान को फायदा नहीं होगा। पहली तो मध्यप्रदेश की बुरी तरह फेल हो चुकी भावांतर योजना है। योजना यह थी कि किसान बाजार-भाव पर फसल बेचे, और अगर बाजार-भाव न्यूनतम समर्थन मूल्य से कम हो तो उस अंतर की भरपाई सरकार करेगी। लेकिन भावांतर योजना में किसान को स्वयं मिले दाम के बजाय उसकी मंडी और आस-पड़ोस की मंडियों के औसत दाम और न्यूनतम समर्थन मूल्य में अंतर के हिसाब से भुगतान किया गया। इससे किसान को भारी नुकसान हुआ। उधर इस योजना का फायदा उठाने के लिए व्यापारियों ने रातोंरात फसलों के दाम गिरा दिए और बाद में जमकर मुनाफा कमाया। इसका **सुधार किए बिना भावांतर योजना को देश-भर में लागू करने से किसानों को नुकसान तथा व्यापारियों और सटोरियों को मुनाफा होगा।**

तीसरा तरीका यह बताया गया कि सरकार की तरफ से न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद का काम व्यापारी करेंगे। खरीद, ढुलाई, भंडारण और फिर बिक्री सब उनकी जिम्मेवारी होगी। सरकार इसके बदले उन्हें 15 फीसदी तक शुल्क देगी। सवाल यह है कि **अगर फसल का बाजार भाव न्यूनतम**

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 31

समर्थन मूल्य से काफी कम होगा, तो कोई व्यापारी उसे क्यों खरीदेगा? किसान आंदोलनों ने मांग की थी कि इसके बदले सरकार सिर्फ इतना नियम बना दे कि किसी भी व्यापारी के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य से नीचे खरीदना अपराध माना जाएगा। महाराष्ट्र सरकार ने कानून बनाया, लेकिन इस पर केंद्र सरकार चुप रही। इसलिए कई किसान संगठनों ने यह आशंका व्यक्त की है कि पिछले दरवाजे से सरकार फसलों की खरीद के काम का भी निजीकरण करने जा रही है।

इस नई नीति से सबसे बड़ी निराशा यह है कि इसमें सरकारी खरीद के सबसे बुनियादी सवालों को छुआ तक नहीं गया है। सच यह है कि पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, आंध्र प्रदेश और ओड़िशा के कुछ हिस्सों को छोड़कर देश के अधिकांश इलाकों में सरकारी खरीद की सुचारु व्यवस्था ही नहीं है। जब खरीद केंद्र और मंडी की व्यवस्था ही नहीं है तो किसान अपनी फसल किसे बेचेगा? सरकारी नीति में इसका कोई उपाय नहीं सुझाया गया। ठेके और बटाई पर खेती करने वाले अधिकतर किसानों के लिए अपनी फसल एमएसपी पर बेचने की कोई व्यवस्था नहीं सोची गई है।

जाहिर है, जब नीति ही इतनी लचर थी तो उसके परिणाम भी उतने ही लचर होने थे। मोदी सरकार की ऐतिहासिक घोषणा की परीक्षा का समय आ गया। लेकिन अपनी घोषणा पर डुगडुगी बजाने वाली इस सरकार ने उसके अनुरूप किसानों को फसल के दाम दिलवाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। खरीफ की फसल बाजार में आने की सरकारी तारीख 1 अक्टूबर से शुरू होती है। लेकिन देश के अलग-अलग इलाकों से आ रही रपट यही दिखाती है कि **या तो एमएसपी पर सरकारी खरीद शुरू ही नहीं हुई या फिर सरकारी खरीद के रास्ते में इतनी बाधाएं खड़ी कर दी गईं कि साधारण किसान उसका लाभ ही नहीं उठा सका। ऐसे में किसान अपनी फसल आढ़ती को औने-पौने दाम पर बेचने को मजबूर हुआ है।** मीडिया ही नहीं, सरकार की अपनी वेबसाइट एग्रीमार्कनेट हर रोज देश-भर की मंडियों में मुख्य फसलों के दाम के आंकड़े प्रकाशित कर रही है। सरकार की अपनी वेबसाइट से प्रमाण मिल रहा है कि किसान लुट रहे हैं

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 32

तालिका 3 : एमएसपी की जमीनी सच्चाई (1 से 9 अक्टूबर 2018 के दौरान बड़ी मंडियों में खरीफ के प्रमुख उत्पादों के औसत मूल्य की एमएसपी से तुलना)

उत्पाद	मंडी	एमएसपी (रु.)	औसत मूल्य (रु.)
मूंगफली	शिवपुरी (मध्यप्रदेश)	4890	3005
मूंग	ललितपुर (उत्तर प्रदेश)	6975	3184
सोयाबीन	उज्जैन (मध्यप्रदेश)	3399	3010
बाजरा	दौसा (राजस्थान)	1950	1459
मक्का	हवेरी (कर्नाटक)	1700	1413
ज्वार	जालना (महाराष्ट्र)	2430	1942
रागी	मांड्या (कर्नाटक)	2897	2256

स्रोत : Financial Express, October 15, 2018

और सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी है।

तालिका 3 में खरीफ की बिक्री के पहले सप्ताह यानी 1 से 9 अक्टूबर के बीच मुख्य फसलों के औसत दाम के सरकारी आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं।

यानी सरकार की तमाम घोषणाओं और दावों के बावजूद खरीफ की एक भी फसल ऐसी नहीं थी जो कि सरकार द्वारा घोषित न्यूनतम समर्थन मूल्य के नजदीक भी बिक रही हो। हर फसल में किसान को भारी घाटा हो रहा था। सिर्फ कपास की फसल कहीं-कहीं न्यूनतम समर्थन मूल्य से ऊपर बिकी। लेकिन उसका कारण यह था कि कपास की फसल नष्ट होने के कारण उसकी आपूर्ति कम हो गई थी। यहां भी सरकार की कोई भूमिका नहीं थी।

यह है प्रधानमंत्री 'आशा' का निराशाजनक सच!

*सन्दर्भः **प्रधानमंत्री आशा योजना** का विश्लेषण देखें योगेंद्र यादव, 'किसान के हिस्से कड़वे लड्डू', राजस्थान पत्रिका, 20 सितम्बर 2018। खरीफ 2018 के बाजार सरकारी वेबसाइट http://agmarknet.gov.in/ पर देखे जा सकते हैं।*

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 33

अध्याय तीन

सरकारी दावों में कितना सच?

जैसे-जैसे मोदी सरकार का कार्यकाल पूरा होने के करीब आ रहा है, वैसे-वैसे बीजेपी के नेता खुद अपने घोषणापत्र के वादों की बात नहीं करते। उसके बदले मोदी जी और बीजेपी के तमाम नेता सरकार की कुछ अन्य उपलब्धियों का जिक्र करते हैं। वादों से हटकर हमें दावों की ओर ले जाते हैं। हमें बार-बार बताया जाता है कि सरकार ने कृषि पर होने वाले खर्च को दोगुना कर दिया है, अधूरी पड़ी सिंचाई परियोजनाओं को पूरा कर दिया है, फसल का नुकसान होने पर किसान को राहत दिलाने के लिए अभूतपूर्व बीमा योजना लागू की है, नीम कोटेड यूरिया से किसानों का कल्याण हो गया है, सॉयल हेल्थ कार्ड के जरिये वैज्ञानिक ढंग से फसलों के चुनाव का काम शुरू हो गया है, आदि-आदि। इनमें से कुछ बातों का चुनावी घोषणापत्र में जिक्र था, कुछ का नहीं था। तो चलिए घोषणापत्र के वादों को छोड़कर अब हम सरकार के इन प्रमुख दावों की जांच करते हैं।

3.1 कृषि में दोगुना खर्च का दावा सफेद झूठ

प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने दावा किया है कि उनकी सरकार ने कृषि पर केंद्र सरकार के खर्च को दोगुना कर दिया है। उनका दावा है कि यूपीए सरकार ने 2009 से 2014 तक 1.21 लाख करोड़ रु. कृषि पर खर्च किया, उसके मुकाबले उनकी सरकार ने 2.12 लाख करोड़ रु.

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 34

खर्च किया, जो पिछली सरकार से लगभग दोगुना है। यह दावा तीन छोटे-बड़े झूठ पर आधारित है। पहला तो गणित का खोट हैः यह बढ़ोत्तरी लगभग दोगुनी यानी सौ प्रतिशत नहीं बल्कि 75 प्रतिशत है। दूसरा और ज्यादा महत्वपूर्ण झूठ अर्थशास्त्र का हैः महंगाई के चलते हर सरकार हर मद में पिछली सरकार से हमेशा ज्यादा खर्च करती ही है। हर साल सरकारी बजट पिछले साल के बजट से ज्यादा होता ही है। अगर इस तरह से तुलना करने लगें तो देश की आजादी के समय राष्ट्रपति को जितनी तनख्वाह मिलती थी, उससे ज्यादा तनख्वाह आज चपरासी को मिलती है! अगर दो वर्षों की तुलना करनी हो तो देखना यह चाहिए कि सरकार ने बजट का या सकल राष्ट्रीय आय (जीडीपी) का कितना प्रतिशत कृषि पर खर्च किया। यहां तीसरा फरेब हाथ की सफाई का हैः मोदी सरकार ने चुपचाप बजट के एक महत्वपूर्ण मद को वित्त मंत्रालय के बजट से हटाकर कृषि मंत्रालय के बजट में डाल दिया। किसानों को फसली लोन के ब्याज पर जो सबसिडी मिलती थी, उसकी गिनती पहले वित्त मंत्रालय के खाते में होती थी। श्री अरुण जेटली ने 2016 में इस मद को कृषि मंत्रालय के बजट में डाल दिया। फिर यह दावा किया कि सरकार ने कृषि पर खर्च बढ़ा दिया है। इसे कहते हैं हाथ की सफाई!

अगर सही तरीके से हिसाब लगाएं तो पता लगता है कि **दोगुना तो छोड़िए, कृषि के बजट में एक सूत भी बढ़ोत्तरी नहीं हुई। यूपीए सरकार ने अपने अंतिम वर्षों में बजट का 2.1 फीसदी और 2.0 फीसदी कृषि पर खर्च किया था। मोदी सरकार ने अपने पहले साल में इसे घटाकर 1.9 फीसदी कर दिया, फिर आगामी वर्षों में 2.0 फीसदी, 2.3 फीसदी, फिर 2.3 फीसदी और 2.4 फीसदी किया है।** इसे आप कृषि बजट को दोगुना करना कहेंगे? अगर पिछली सरकार के बजट में भी ब्याज की सबसिडी को जोड़ दिया जाए तो दोनों सरकारों ने अपने सभी बजट का लगभग दो फीसदी और देश के जीडीपी का 0.3 फीसदी कृषि पर खर्च किया।

सच तो यह है कि मोदी सरकार के दौरान कृषि बजट का किसानों

को मिलने वाला हिस्सा पहले से घट गया है। राष्ट्रीय कृषि विकास योजना के लिए सरकार ने 2014-15 में 8443 करोड़ रु. आवंटित किए थे जबकि 2018-19 में इसे घटाकर 3600 करोड़ रु. कर दिया। इस **सरकार के तहत कृषि बजट का एक बड़ा हिस्सा सिर्फ प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना खा रही है,** जिसका फायदा किसानों को नहीं, बीमा कंपनियों को मिल रहा है। पहले साल कृषि बजट का 8.1 फीसदी हिस्सा फसल बीमा पर खर्च हुआ था, लेकिन 2018-19 के बजट में यह लगभग तीन गुना बढ़कर 22.6 फीसदी हो गया। इसी दौरान ब्याज सबसिडी का हिस्सा 18.8 फीसदी से बढ़कर 26 फीसदी हो गया। यानी किसान को फायदा पहुंचाने वाली बाकी सभी योजनाओं का हिस्सा कृषि बजट में तीन चौथाई से घटकर सिर्फ आधा रह गया। सच यह है कि इस सरकार के तहत कृषि में फंड का आवंटन तो हो जाता है, लेकिन उसका उपयोग पहले से घट गया है। कुल मिलाकर कहें तो कृषि पर बजट का खर्च दोगुना करने का दावा सफेद झूठ है।

सन्दर्भः बजट में कृषि *खर्च के सभी आंकड़ों के लिए देखें "कितना सटीक कहाँ चूकेः केंद्रीय बजट 2018-19 का विश्लेषण" http://www.cbgaindia.org/wp—content/uploads/2018/04/कितना–सटीक–कहां–चूक–केन्द्रीय–बजट–2018–19–का–विश्लेषण. pdf*

3.2 सिंचाई परियोजनाओं के दावों का अर्धसत्य

सिंचाई के क्षेत्र में प्रधानमंत्री ने बड़े-बड़े दावे किए हैं। उन्होंने कहा कि पिछली सरकारों ने अनेक सिंचाई परियोजनाओं को अधूरा छोड़ रखा था। यह बात सही थी। उन्होंने कहा कि उनकी सरकार नए प्रोजेक्ट शुरू करने के बजाय पुरानी परियोजनाओं को पूरा करेगी। यह प्राथमिकता भी ठीक थी। लेकिन साथ में प्रधानमंत्री यह भी कहते हैं कि यह लक्ष्य पूरा करने में उनकी सरकार को बड़ी सफलता मिली है। यह दावा सच नहीं है। मोदी सरकार ने प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत 50 हजार करोड़ रु. खर्च करने और छोटी-बड़ी सिंचाई परियोजनाएं पूरा करने के महत्वाकांक्षी लक्ष्य रखे थे। सच यह है कि अब तक न तो सरकार ने उतना पैसा दिया, न ही परियोजनाओं को पूरा

करने का लक्ष्य हासिल हुआ।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना का सबसे प्रमुख हिस्सा है **त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम (एआईबीपी)।** इस कार्यक्रम के तहत सरकार ने 149 उन बड़ी और मझोली सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने का लक्ष्य रखा, जो अभी तक अधूरी पड़ी थीं। गौरतलब है कि इस काम को पूरा करने की समय-सीमा दिसंबर 2019 रखी गई, जो कि इस सरकार के कार्यकाल से परे है। यहां सरकार ने अपनी जवाबदेही टाल दी। लेकिन इस लक्ष्य का बड़ा हिस्सा मोदी सरकार के कार्यकाल के भीतर ही पूरा होना था। कम से कम उसकी जांच हम जरूर कर सकते हैं। इन 149 परियोजनाओं में से सरकार ने 99 ऐसी परियोजनाएं चुनीं, जिन्हें प्राथमिकता की तीन श्रेणियों में रखा गया। पहली श्रेणी में 23 परियोजनाएं रखी गईं, जिन्हें मार्च 2017 तक पूरा किया जाना था। लेकिन दिसंबर 2017 तक इनमें निर्धारित सिंचित क्षेत्र के लक्ष्य का एक तिहाई अधूरा पड़ा था। दूसरी श्रेणी में 31 परियोजनाएं थीं, जिन्हें जून 2018 तक पूरा करना था। इनमें समय पूरा होने के बाद भी अक्टूबर 2018 में सिंचित क्षेत्र के लक्ष्य का एक चौथाई बाकी था। तीसरी श्रेणी में 45 परियोजनाएं थीं, जिन्हें पूरा करने में अभी जून 2019 तक का समय बाकी है। लेकिन अक्टूबर 2018 तक उनमें से 60 प्रतिशत लक्ष्य ही हासिल हो पाया है। इसके अलावा 43 ऐसे प्रोजेक्ट हैं जिन्हें जून 2019 के बाद टाल दिया गया है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना का दूसरा बड़ा हिस्सा है **जलग्रहण क्षेत्र प्रबंधन यानी कि वाटरशेड**। इसके तहत देश-भर में 8,214 लघु सिंचाई परियोजनाओं को चिह्नित किया गया था। इन पर कुल 21,110 करोड़ रु. खर्च होने का अनुमान था। अब तक कैबिनेट ने सिर्फ 12,000 करोड़ यानी कि लगभग आधा पैसा ही मंजूर किया है। जहां तक परियोजनाएं पूरी होने की बात है, यहां हालत बिलकुल खस्ता है। एक संसदीय समिति की जुलाई 2018 में जारी हुई रिपोर्ट के अनुसार, **इन 8,214 लघु सिंचाई परियोजनाओं में से केवल 849 परियोजनाएं पूरी हो पाई हैं।** यानी कि 90 फीसदी काम अभी बाकी है। यही हाल

तालाबों के जीर्णोद्धार (रिपेयर, रेनोवेशन एंड रिस्टोरेशन ऑफ वाटरबॉडीज) कार्यक्रम का है। पहले साल में लक्ष्य था 1.5 लाख हेक्टेयर का, लेकिन पूरा हुआ 0.15 लाख हेक्टेयर। अगले साल इस मद के तहत पैसा ही नहीं दिया गया। 'पर ड्रॉप मोर ड्रॉप' के तहत 100 लाख हेक्टेयर जमीन को टपक और फव्वारा सिंचाई जैसी योजनाओं के तहत लाना था लेकिन दो साल में 18.4 लाख हेक्टेयर का हिस्सा ही पूरा हो पाया।

कुल मिलाकर सिंचाई के मोर्चे पर ढाक के तीन पात जैसी स्थिति है। देश की आधे से अधिक कृषियोग्य भूमि में बारानी खेती होती है, जो कि पूरी तरह बारिश पर आश्रित है। वैज्ञानिक बता रहे हैं कि जलवायु परिवर्तन के चलते आने वाले कुछ दशकों में वर्षा आश्रित खेती की स्थिति बद से बदतर होती जाएगी। खुद भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण इस सच को कबूल करता है कि बारानी खेती करने वाले किसानों की आय 15 से 25 प्रतिशत तक घटने की आशंका है। लेकिन कोई भी सरकार इस मसले को देश की प्राथमिकता नहीं बना रही। मोदी सरकार से पहले की सरकारों का कामकाज बहुत ढीला था। इसमें ऐतिहासिक परिवर्तन करने के दावों के बावजूद सिंचाई के मोर्चे पर मोदी सरकार की ढिलाई जस की तस है।

*सन्दर्भः **त्वरित सिंचाई लाभ** कार्यक्रम के आंकड़े सरकारी वेबसाइट http://pmksy—mowr.nic.in/aibp/ के इस लिंक से लिए गए है। वाटरशेड परियोजनाओं के आंकड़ों और विश्लेषण के लिए देखें "Close to 90% projects under PM's flagship irrigation scheme remain incomplete", Down to Earth, 25 July 2018.*

3.3 फसल बीमा योजना ने किसानों को ठगा

अब आते हैं प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना पर। इस योजना को 2016 में शुरू करते समय सरकार ने दावा किया था कि यह एक ऐतिहासिक योजना है। ऐसा प्रचार किया गया मानो फसल के नुकसान की रामबाण औषधि आ गई है। दावा किया गया कि हर किसान के हर किस्म के जोखिम के लिए बीमा करवाया जाएगा। मोदी राज की परंपरा के मुताबिक प्रधानमंत्री को इस ऐतिहासिक घोषणा के लिए बधाई दी

गई, जमकर प्रोपेगेंडा किया गया। सच यह है कि प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना भारत सरकार द्वारा फसल बीमा की पहली योजना नहीं थी और न ही यह पूरी तरह कोई नई योजना थी। अस्सी के दशक से भारत सरकार ने बार-बार तरह-तरह की फसल बीमा योजनाएं शुरू कीं, बार-बार ये योजनाएं असफल हुईं, बार-बार पैबंद लगाए गए, बार-बार योजनाएं नए नाम से शुरू की गईं। बार-बार नए संस्करण भी फेल हो गए। प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना इसी सिलसिले का नवीनतम संस्करण है। लगता है उसका भी वही हश्र होगा, जो पुरानी योजनाओं का हुआ था।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में पुरानी फसल बीमा योजनाओं की कुछ खामियों को दूर किया गया, लेकिन कुछ बुनियादी कमजोरियां बदस्तूर चली आ रही हैं। इस योजना में पहले से ज्यादा किस्म के जोखिम और नुकसान को शामिल किया गया। फिर भी, आवारा पशुओं द्वारा होने वाला नुकसान अब भी बीमा से बाहर है। पुरानी फसल बीमा योजना की एक बड़ी दिक्कत यह थी कि नुकसान की इकाई तहसील या ब्लॉक को माना जाता था। नतीजा यह होता था कि जब तक पूरे तहसील या ब्लॉक में फसल का नुकसान न हो, तब तक एक किसान या पूरे गांव के नुकसान को नुकसान माना ही नहीं जाता था। नई योजना में इस पक्ष में सुधार करके गांव को इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है। लेकिन यह प्रावधान केवल जिले की प्रमुख फसल के लिए ही है। बाकी फसलों के लिए अब भी तहसील या कहीं-कहीं तो पूरे जिले को ही इकाई माना जाता है। यों भी गांव को नुकसान की इकाई मान लेने से किसान की समस्या हल नहीं हो जाती। सूखा और बाढ़ जैसी आपदा में तो पूरे गांव को एक इकाई मानना समझ में आता है, लेकिन ओलावृष्टि, बिजली गिरने जैसी आपदाओं में **हर खेत को अलग इकाई मानने से ही किसान का बचाव हो सकता है। इसका प्रावधान प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में नहीं है।**

पुरानी योजनाओं की तरह प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना की असली कमजोरी उसके कानूनी प्रावधान नहीं हैं। असली समस्या

सरकार में राजनैतिक इच्छाशक्ति की कमी है। सरकारी तंत्र इस योजना को लागू करने में कोई दिलचस्पी नहीं लेता। स्थानीय स्तर पर सरकारी कर्मचारियों और प्राइवेट बीमा कंपनियों में मिलीभगत हो जाती है। किसान से प्रीमियम बटोरने में तत्परता रहती है, लेकिन क्लेम देने में कोताही की जाती है। सच यह है कि ज्यादातर किसानों को पता भी नहीं है कि यह बीमा योजना क्या है, वे अपना बीमा कहां से करवा सकते हैं, कितना प्रीमियम देना होगा, नुकसान होने पर कितना भुगतान मिलेगा और उसके लिए क्या कार्रवाई करनी पड़ेगी। सच यह है कि पुरानी बीमा योजनाओं की तरह इस योजना में भी किसान क्रेडिट कार्ड के तहत लोन लेने वाले सभी किसानों का जबरदस्ती बीमा कर दिया जाता है। उनमें से अधिकतर को तो पता भी नहीं होता कि उनके खाते से बीमे का प्रीमियम काट लिया गया है। बीमा पॉलिसी के नाम पर किसान को कोई दस्तावेज भी उपलब्ध नहीं करवाया जाता है। बीमे का दावा करने की शर्तें और कागजी कार्यवाही इतनी पेचीदा है कि साधारण किसान उन्हें पूरा ही नहीं कर सकता। जैसे ही आपदा की आशंका होती है, बीमा कंपनियां तरह-तरह के बहाने लगाकर बीमा खारिज करने लगती हैं, किसानों का प्रीमियम लौटा भी देती हैं। आपदा होने पर कंपनियों का निहित स्वार्थ इसमें रहता है कि वे अधिक से अधिक बीमा क्लेम को कोई न कोई पेच निकाल कर खारिज कर दें। इसमें सरकारी अमले की कोई जवाबदेही नहीं होती। बीमा कंपनियों के खिलाफ शिकायत की सुनवाई और शिकायत निवारण की कोई व्यवस्था नहीं है।

इन सब खामियों के चलते प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना भी अपनी पूर्ववर्ती योजनाओं के रास्ते पर चल रही है। इसके सरकारी आंकड़े तालिका 4 में पेश किए गए हैं। अब तक पहले तीन मौसम यानी कि **2016-17 के खरीफ और रबी और 2017-18 के खरीफ के पूरे और रबी के आंशिक आंकड़े उपलब्ध हो चुके हैं और सरकारी दावों की पोल खुलने लगी है।** प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना को लागू करने से पहले, पुरानी योजना के तहत देश के सिर्फ 23 प्रतिशत किसान फसल बीमा योजना से लाभान्वित हो रहे थे। उस वक्त दावा किया गया

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 40

था कि इस नई योजना से पहले साल में 30 प्रतिशत, दूसरे साल में 40 प्रतिशत और तीसरे साल में 50 प्रतिशत किसान बीमाधारी हो जाएंगे। वास्तव में पहले साल में तो बीमाधारकों की संख्या 4.86 करोड़ से बढ़कर 5.71 करोड़ यानी 28 प्रतिशत हुई, लेकिन अगले साल 2017-18 में यह संख्या घटकर 5.26 करोड़ ही रह गई। अगर इसे जमीन के आंकड़े में देखें तो खास बदलाव नहीं है। यह योजना लागू होने से पहले 2014-15 में 3.71 करोड़ हेक्टेयर और 2015-2016 में 5.23 करोड़ हेक्टेयर जमीन का बीमा हुआ था। पहले साल यह बढ़कर 5.68 करोड़ हेक्टेयर हुआ और फिर 2017-18 में 4.93 करोड़ हेक्टेयर रह गया। पुरानी योजनाओं की तरह इस योजना में भी अधिकतर किसान वही थे, जिनका किसान क्रेडिट कार्ड के चलते अनिवार्य बीमा हो गया था। **अपनी इच्छा से बीमा लेने वाले किसान कुल बीमाधारकों के एक चौथाई से भी कम थे।**

तालिका 4 : फसल बीमा योजना की हकीकत (बीमाधारकों की संख्या, प्रीमियम, क्लेम और कंपनियों का मुनाफा, 2016-18)

फसल/वर्ष	बीमाधारी किसान (करोड़)	कंपनियों को प्रीमियम मिला (रु. करोड़)	किसानों को क्लेम दिया (रु. करोड़)	कंपनियों का मुनाफा (रु. करोड़)
वर्ष 2014-15	3.71	4,946	7,894	(-) 2,903
वर्ष 2015-16	4.86	5,614	21,608	(-) 15,994
खरीफ 2016	4.02	16,601	10,411	5,852
रबी 2017	1.69	5,873	5,091	450
वर्ष 2016-17	5.71	22,475	15,502	6,302
खरीफ 2017	3.73	19,381	15,948	4,078
रबी 2018	1.52	5,227	उपलब्ध नहीं	उपलब्ध नहीं
वर्ष 2017-18	5.26	24,608	15,948	3,433

नोट : मुनाफे में (-) का मतलब है मुनाफे की जगह घाटा।
स्रोत : *सभी आंकड़े कृषि मंत्रालय द्वारा 13 जुलाई 2018 को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के मूल्यांकन की प्रस्तुति 'Review of Performance of PMFBY' से लिए गए हैं।*

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 41

योजना के पहले दो साल का अनुभव तो यही बताता है कि इससे किसानों के बजाय बीमा कंपनियों को अधिक फायदा हुआ है। पहले साल के अंतिम आंकड़े और दूसरे साल के अंतरिम आंकड़े तालिका 4 में उपलब्ध हैं। पहले साल यानी 2016-17 में रबी और खरीफ की फसल मिलाकर कंपनियों को 22,475 करोड़ रु. का प्रीमियम दिया गया था। बदले में बीमा कंपनियों ने किसानों को 15,502 करोड़ रु. के बीमे का भुगतान किया। बीमा कंपनियों को पहले साल में 31 प्रतिशत, यानी कुल 6,973 करोड़ रु. का मुनाफा हुआ। दूसरे साल खरीफ में कंपनियों को 3,433 करोड़ रु. का मुनाफा हुआ। यानी कि पहली तीन फसलों में फसल बीमा से कंपनियों को दस हजार करोड़ से अधिक का लाभ हुआ। इन कंपनियों में कुछ सरकारी हैं और बाकी प्राइवेट। सरकारी कंपनियों ने औसतन 21 प्रतिशत मुनाफा कमाया जबकि प्राइवेट कंपनियों का औसत मुनाफा 29 प्रतिशत था। यहां गौरतलब है कि प्राइवेट कंपनियां इस बीमा योजना में अपनी ओर से कुछ खर्च नहीं करती हैं। बीमा करवाने से लेकर नुकसान का अनुमान लगाने तक का ज्यादातर काम सरकारी कर्मचारी ही करते हैं। अधिकतर कंपनियों के तो स्थानीय स्तर पर दफ्तर भी नहीं हैं। यह योजना शुरू होने से पहले 2014-15 और 2015-16 में बीमा कंपनियों को मुनाफा होने के बजाय घाटा हुआ था।

प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के पैरोकार अकसर कहते हैं कि बीमा योजना को एक या दो साल में नहीं जांचना चाहिए। संयोगवश प्रधानमंत्री बीमा योजना के लागू होने के बाद से दोनों वर्ष सामान्य मानसून रहा। अगर इन सालों में कंपनियों ने मुनाफा कमा लिया तो इसमें क्या गड़बड़ है? इस तर्क की जांच करने के लिए हम पूरे देश का मानसून देखने के बजाय केवल उन राज्यों में देखें जहां नुकसान हुआ।

इस योजना के पहले ही साल खरीफ 2016 की फसल में उत्तर प्रदेश में सूखे की मार पड़ी। **बीमा करवाया था 37.17 लाख किसानों ने, लेकिन मुआवजा मिला सिर्फ 2.09 लाख किसानों को, यानी बीमा करवाने वालों में भी सिर्फ 6 फीसदी किसानों को।** कंपनियों को

प्रीमियम मिला 650 करोड़ रुपए का और किसानों को भुगतान हुआ 450 करोड़ रुपए का, यानी कि कुल बीमा राशि का सिर्फ 3 फीसदी क्लेम मिला। प्राकृतिक आपदा में भी कंपनियों ने 200 करोड़ का मुनाफा बटोर लिया। अगले साल 2017 में उत्तर बिहार में भयानक बाढ़ आई, लेकिन खरीफ 2017 में बीमा करवाने वाले केवल 7 फीसदी किसानों को क्लेम मिला। **कुल बीमा राशि का सिर्फ 2 फीसदी क्लेम दिया गया। इस प्राकृतिक आपदा के बावजूद बीमा कंपनियों ने 470 करोड़ रुपए कमाए।** फसल बीमा योजना की एकमात्र बड़ी सफलता रबी 2017 में तमिलनाडु है, जब वहां पिछले 140 सालों का सबसे भयंकर सूखा पड़ा था। वहां अधिकांश किसानों को क्लेम मिला। प्रीमियम 1211 करोड़ का था, लेकिन बीमा कंपनियों को 3346 करोड़ रुपए का क्लेम देना पड़ा। इस ऐतिहासिक त्रासदी में भी बीमा कंपनियों को कुल बीमा राशि की आधी राशि ही क्लेम में देनी पड़ी थी।

जगह-जगह से फसल बीमा के नाम पर किसानों के ठगे जाने की खबरें आ रही हैं। कई जिलों में बीमा कंपनियों ने प्रीमियम के नाम पर बहुत बड़ी राशि लूटी। योजना के पहले वर्ष में जिला राजकोट (गुजरात) में मूंगफली की फसल के लिए बीमा राशि का 58 प्रतिशत प्रीमियम वसूला गया, उमरिया (मध्यप्रदेश) में तुअर की फसल के लिए और गुजरात के तापी जिले में ज्वार की फसल के लिए 40 प्रतिशत प्रीमियम वसूला गया, गडवाल (तेलंगाना) में कपास के लिए 31 प्रतिशत प्रीमियम लिया गया। अगर प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना में कोई एक वास्तविक बढ़ोत्तरी हुई है तो वह है सरकारी खर्च। यह योजना शुरू होने से पहले केंद्र सरकार हर साल तीन हजार करोड़ रुपये से कम, फसल बीमा पर खर्च करती थी। लेकिन यह योजना आते ही केंद्र सरकार का खर्च चार गुना से ज्यादा बढ़ गया। **सन 2015-16 में 2,893 करोड़ रुपये से बढ़कर 2016-17 में 13,240 करोड़ रुपये का खर्च हुआ। यानी खर्च 450 फीसदी बढ़ा, लेकिन लाभान्वित होने वाले किसान 10 फीसदी भी नहीं बढ़े।** इस दौरान किसानों को मिलने वाली बीमा के क्लेम की राशि बढ़ने के बजाय घट गई। 2015-16 में किसानों को 21,608

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 43

करोड़ रु. का भुगतान किया गया था। नई योजना के पहले साल 2016-17 में यह घट कर 15,502 करोड़ रुपए रह गया।

यह पैसा बीमा कंपनी को देने के बजाय सीधा किसान के खाते में दिया जाता तो किसान का भला हो जाता। फसल बीमा योजना के बारे में देश-भर के किसान यही महसूस करते हैं कि यह तो बैंकों ने अपने लोन का बीमा करवाया है, किसान की फसल का नहीं।

सन्दर्भः देश और दुनिया में फसल बीमा *योजनाओं के परिचय और विश्लेषण के लिए देखें Ashok Gulati, Prerna Terway and Siraj Hussain, "Crop Insurance in India: Key Issues and Way Forward" ICRIER Working Paper, February 2018. | फसल बीमा योजना के अधिकांश आंकड़े इस योजना की सरकारी वेबसाइट https://pmfby.gov.in/ में दी गयी रिपोर्ट पर आधारित हैं। तालिका 4 में दी गई सूचना कृषि मंत्रालय द्वारा 13 जुलाई 2018 को प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के मूल्यांकन की प्रस्तुति "Review of Performance of PMFBY" से ली गयी है। योजना के मूल्यांकन के लिए देखें Meagre payments, reluctant states mar Modils flagship crop insurance scheme", Down To Earth, 17 July 2018 और खर्चे के विश्लेषण के लिए देखें Kabir Agarwal and Dheeraj Mishra "Under Modils Crop Insurance Scheme, Premiums up 350% But Farmers' Coverage Stagnant" The Wire, 12 November 2018*

तालिका 5 : किसान के नाम पर पूंजीपतियों को ऋण (बकाया कृषि ऋण की राशि और मात्रा, 31 मार्च 2016)

कृषि ऋण की मात्रा (रु.)	कुल बकाया ऋण (लाख, करोड़ रु. में)	कुल बकाया ऋण का अंश
25 हजार से कम	0.20	2%
25 हजार से 1 लाख तक	1.89	22%
1 लाख से 5 लाख तक	3.35	39%
5 से 25 लाख तक	1.34	16%
25 लाख से अधिक	1.82	21%
कुल जमा	8.60	100%

स्रोत : रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा श्री धीरज मिश्रा को सूचना के अधिकार के तहत 13 मार्च 2018 को उपलब्ध कराई गई सूचना। 'द वायर' द्वारा 4 सितंबर 2018 को प्रकाशित।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 44

3.4 कृषि ऋण की हालत जस की तस है

मोदी सरकार का एक और दावा है कि उसके राज में किसानों को ऋण की उपलब्धता पहले से बहुत बढ़ी है। सरकार ने हर बजट में कुल कृषि-ऋण के आवंटन के आंकड़े पेश कर यह साबित करने की कोशिश की है कि उसने अपना चुनावी वादा पूरा कर दिया है। अगर सिर्फ आंकड़े देखें तो बात सही लगती है। मोदी सरकार के पहले साल 2014-15 में बैंकों द्वारा कृषिक्षेत्र को ऋण आवंटन का लक्ष्य 8 लाख करोड़ रु. था। आगामी हर वित्तवर्ष में यह लक्ष्य बढ़ता गया- सन 2015-16 में 8.5 लाख करोड़ रु., फिर 9 लाख करोड़ रु., फिर 10 लाख करोड़ रु. और 2018 में 11 लाख करोड़ रु. हो गया। लक्ष्य के साथ-साथ बैंकों द्वारा आवंटन भी बढ़ता गया। हर साल बैंकों ने कृषि-ऋण का अपना लक्ष्य पार कर लिया।

लेकिन इन आंकड़ों से कोई बड़ा निष्कर्ष निकालने से पहले हमें कुछ जमीनी सच्चाई को ध्यान में रखना होगा। पहला तो यह कि ये कृषि-ऋण बैंकों द्वारा दिए जा रहे हैं, सरकार द्वारा नहीं। सरकार कृषि-ऋण के एक हिस्से यानी फसली ऋण के ब्याज पर एक छोटा-सा अनुदान भर देती है। इसलिए कृषि-ऋण मद को सरकार द्वारा किसानों के कल्याण के लिए किए जाने वाले खर्च के रूप में पेश करना गलत है। दूसरा, यह मानना भूल होगी कि हर साल बैंक किसानों को इतनी बड़ी मात्रा में नया लोन देते हैं। कृषि-ऋण की जमीनी सच्चाई यह है कि इसका अधिकांश हिस्सा किसानों के पुराने ऋण का नवीनीकरण होता है, लेकिन इसे कागज पर नए लोन की तरह दिखाया जाता है। बैंक एक हाथ से किसान से पुराना ऋण वापस लेते हैं और दूसरे हाथ से उसे नया ऋण दे देते हैं। तीसरा, **कृषि-ऋण के नाम पर लिये जाने वाले लोन का अधिकांश हिस्सा किसानों को नहीं बल्कि कृषि से जुड़े हुए व्यापारियों और उद्योगपतियों को मिलता है।** सच यह है कि रिजर्व बैंक ने गैर-कॉरपोरेट कृषि के लिए प्राथमिकता के आधार पर जो 13.5 प्रतिशत का कोटा तय कर रखा है, वह एक भी साल पूरा नहीं हुआ है। इसी तरह, छोटे और सीमांत किसानों के लिए 8 प्रतिशत ऋण

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 45

का कोटा भी पूरा नहीं हुआ है। सच यह है कि छोटे किसान, बटाईदार और खेत मजदूर आज भी बैंकों से लोन लेने में असफल रहते हैं और उन्हें सूदखोर से मोटा ब्याज देकर पैसा उठाना पड़ता है। चौथा तथ्य यह है कि सरकार बड़ी-बड़ी कंपनियों के बकाया ऋण को माफ करने के लिए तत्पर रहती है, लेकिन किसानों के बकाया लोन को बेरहमी से वसूल करती रही है। **रिजर्व बैंक के दिशा-निर्देशों के अनुसार, बैंकों को सूखे की आपदा के समय पुराने ऋणों की वसूली रोक देनी चाहिए थी,** बकाया ऋण को रि-स्ट्रक्चर (पुनर्योजित) करना चाहिए था और नए ऋण उपलब्ध कराने चाहिए थे। लेकिन दो साल तक सूखे की आपदा के बावजूद अधिकतर बैंकों ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। कुल मिलाकर, जहां तक कृषि-ऋण का संबंध है, पिछली सरकारों और इस सरकार में कोई फर्क नहीं है।

कृषि ऋण के गोरखधंधे को समझना हो तो तालिका 5 में पेश किए गए रिजर्व बैंक द्वारा हाल ही में जारी 2016 के कृषि ऋण के ब्योरे को देख सकते हैं। 31 मार्च 2016 को देश के सभी बैंकों में कुल मिलाकर 8 लाख 60 हजार करोड़ रुपए का कृषि ऋण बकाया था। उसमें से सिर्फ 2 फीसदी ही उन जरूरतमंद किसानों को मिला था जिन्होंने 25 हजार से कम का लोन लिया। एक लाख तक का लोन लेने वाले किसानों को 22 फीसदी ऋण मिला था। 39 फीसदी ऋण उन किसानों को मिला जिन्होंने एक से पांच लाख रुपये तक का लोन लिया। इसमें कुछ व्यापारी भी शामिल होंगे। लेकिन बाकी 37 फीसदी लोन 5 लाख से अधिक राशि के थे। हम अनुमान लगा सकते हैं कि उनमें अधिकांश व्यापारी या उद्योगपति होंगे। इनमें से **2396 लोगों को प्रतिव्यक्ति कृषि के नाम पर 5 करोड़ से अधिक ऋण दिया गया। बैंकों द्वारा कृषि के नाम पर बड़े पूंजीपतियों को ऋण देने का सिलसिला नया नहीं है, लेकिन मोदी सरकार ने इसे बदस्तूर जारी रखा।**

__सन्दर्भः कृषि ऋण की सामान्य सूचना रिज़र्व बैंक__ की रिपोर्ट में मिलती है, लेकिन तालिका 5 में दिए गए आंकड़े धीरज मिश्रा द्वारा सूचना के अधिकार के तहत 13 मार्च 2018 को प्राप्त जानकारी पर आधारित है जो "द वायर" में 4 सितम्बर 2018 को छपी है।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 46

3.5 नीम कोटेड यूरिया के हवाई दावे

सरकार के बड़बोलेपन का एक और सबूत है नीम-कोटेड यूरिया की योजना। प्रधानमंत्री जब-तब इस योजना का जिक्र करने से चूकते नहीं हैं। वे दावा करते हैं कि उन्होंने यह योजना किसानों के कल्याण के लिए शुरू की थी ताकि मिट्टी की गुणवत्ता बढ़े, फसल की उत्पादकता बढ़े, पौधे की रक्षा करने का खर्च घटे और किसान की लागत कम हो। सच यह है कि **नीम-कोटेड यूरिया की योजना 2002 में शुरू की गई थी। और इस योजना का उद्देश्य किसान को बचाना नहीं, बल्कि सरकार के खर्च को घटाना था।** सरकार यूरिया सस्ती दर पर उपलब्ध करवा रही थी, लेकिन उसका इस्तेमाल कृषि को छोड़कर अन्य कामों के लिए (यहां तक कि दूध में मिलावट के लिए भी) किया जा रहा था। इसलिए सरकार ने यूरिया बनाने वाली फैक्टरियों के लिए यह जरूरी कर दिया कि वे अपने उत्पादन के एक हिस्से पर नीम के पेस्ट का लेप कर दें। मोदी सरकार से पहले यह सीमा 35 प्रतिशत थी। इस सरकार ने इसे बढ़ाकर सौ प्रतिशत कर दिया। यानी पूरे के पूरे यूरिया को नीम-कोटेड करना अनिवार्य बना दिया।

बेशक यह सही निर्णय था, लेकिन अभी तक इसके प्रभाव के विश्वसनीय प्रमाण नहीं आए हैं। अब तक हम इतना ही जानते हैं कि नीम-कोटेड यूरिया को अनिवार्य करने से यूरिया की खपत में मामूली-सी कमी आई है और यूरिया के लिए दिए जाने वाले सरकारी अनुदान में भी कुछ बचत हुई है। हम ऐसा मान सकते हैं कि इससे यूरिया के गैर-कृषि उपयोग पर रोक लगी होगी। लेकिन इस योजना से हमारे सस्ते यूरिया की पड़ोसी देशों में तस्करी की समस्या पर कोई असर पड़ा दिखाई नहीं देता। न ही अभी तक नीम-कोटेड यूरिया से कृषि पैदावार पर असर पड़ने का कोई पुख्ता प्रमाण मिला है। फिलहाल सरकार के दावे सिर्फ दावे ही हैं।

*सन्दर्भः **नीम कोटेड यूरिया पर सरकारी दावे** देखने के लिए राज्य सभा में दिए 24 मार्च 2017 के उत्तर पर आधारित प्रेस विज्ञप्ति देखें: http://pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=159903. योजना के विश्लेषण के लिए देखें "Urea coated with neem", Down To Earth, 4 July 2015.*

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 47

3.6 सॉयल हेल्थ कार्ड उद्देश्यविहीन हुए

सॉयल हेल्थ कार्ड का मामला भी कुछ इसी तरह का है। प्रधानमंत्री इसे इस तरह पेश करते हैं मानो यह योजना उन्होंने किसानों को वैज्ञानिक कृषि के लिए मदद करने की दृष्टि से शुरू की थी। सच यह है कि **यह भी एक पुरानी योजना है, जिसका मुख्य उद्देश्य किसानों का भला करना नहीं था। यह योजना 2008 में शुरू की गई थी। उद्देश्य था किसानों को जरूरत से ज्यादा खाद का इस्तेमाल करने से रोकना।** सोच यह थी कि किसान को सरकारी अनुदान पर आधारित सस्ती खाद खरीदने से पहले अपना सॉयल हेल्थ कार्ड दिखाना पड़ेगा, ताकि मिट्टी की जरूरत के हिसाब से उसे खाद आवंटित की जा सके। यह योजना अपने मूल उद्देश्य में फेल हो चुकी थी। मोदी सरकार ने इसका उद्देश्य बदलते हुए इसे किसानों के लिए अपनी मिट्टी के हिसाब से फसल, बीज, खाद आदि चुनने की वैज्ञानिक विधि के रूप में पेश किया। इस सरकार के कार्यकाल में अब तक 4.3 करोड़ मिट्टी के सैंपल टेस्ट किए जा चुके हैं और 16 करोड़ से अधिक कार्ड भी जारी हो चुके हैं। लेकिन किसी को नहीं पता कि इस कार्ड से होगा क्या? जमीनी अनुभव बताता है कि अकसर मिट्टी का सैंपल लेने के नाम पर अलग-अलग खेत की मिट्टी लेने के बजाय पूरे गांव से एक-दो जगह की मिट्टी ली जाती है। कार्ड में लिखी बातों का अर्थ न तो किसान समझता है न कोई उसे समझाता है। यों भी सिर्फ समझने-समझाने से कोई लाभ होने वाला नहीं है। कृषि विज्ञान के अनुसार मिट्टी के चरित्र को समझने का फायदा तभी है जब मिट्टी की तासीर के हिसाब से अनुकूलित खाद उपलब्ध हो और उस पर भी सरकारी सबसिडी मिले। ऐसा है नहीं, इसलिए मामला कार्डों की गिनती से आगे नहीं बढ़ रहा। नीति आयोग के एक अध्ययन के अनुसार, केवल 8.6 प्रतिशत किसानों के पास सॉयल हेल्थ कार्ड था। जिनके पास था उनमें से सिर्फ 6.2 प्रतिशत ने कार्ड की सिफारिशों पर अमल किया था।

*सन्दर्भः **सरकारी आंकड़े** soilhealth.dac.gov.in पर उपलब्ध हैं। इसका मूल्यांकन करने वाली रिपोर्ट है Pilot Study, Assessment of Direct Benefit Transfer in Fertilizer, April, 2018 http://www.microsave.net/files/pdf/Assessment_of_Direct_Benefit_Transfer_in_Fertiliser.pdf*

3.7 ई-नैम से किसान अछूता

प्रधानमंत्री की एक और प्रिय योजना है ई-नैम यानी इलेक्ट्रॉनिक नेशनल एग्रीकल्चर मार्केट। दावा यह है कि किसान को आढ़ती और व्यापारी के चंगुल से छुड़ाने के लिए ऐसी व्यवस्था की जा रही है, जिससे किसान सीधा अपनी फसल देश की किसी भी मंडी में बेच सके। बात सुनने में तो अच्छी लगती है, लेकिन इसके लिए पहले तो किसान के पास कंप्यूटर हो, साथ में इंटरनेट हो। फिर घर में बिजली उपलब्ध हो और कंप्यूटर चलाने में महारत हासिल हो। साथ ही, मंडी में यह व्यवस्था हो कि फसल की किस्म और गुणवत्ता का निष्पक्ष मूल्यांकन हो सके और उसकी जांच के बाद फसल को बोरा-बंद कर बेचने के लिए तैयार रखा जाए। इसके लिए यह भी जरूरी है कि कृषि उपज मंडी की सारी व्यवस्था पारदर्शी हो। सभी खरीद-फरोख्त एक नंबर में हो और कायदे से वेबसाइट पर दर्ज की जाए। अभी तो एगमार्कनेट की वेबसाइट पर सभी खरीद-फरोख्त दर्ज ही नहीं होती। **आढ़ती की कच्ची पर्ची के आधार पर लेन-देन होता है। जब तक ये सब सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं, तब तक सिर्फ मंडियों के कंप्यूटर को एक-दूसरे से जोड़ देने से किसान को कोई फायदा होने वाला नहीं है।**

फिलहाल सरकार ने 585 मंडियों में कंप्यूटर लगाने, उन सबको एक वेबसाइट से जोड़ने का काम कर दिया है। सरकार का दावा है कि 1.1 करोड़ किसानों ने ई-नैम सुविधा का इस्तेमाल किया है। लेकिन जमीनी हकीकत बताती है कि ई-नैम के नाम से दिखाई गई खरीद-फरोख्त दरअसल आढ़ती और व्यापारी द्वारा की गई खरीद-फरोख्त ही है, जिसे कंप्यूटर पर दर्ज कर दिया जाता है। देश का साधारण किसान ऐसे खिलौनों का इस्तेमाल करने की स्थिति में नहीं है।

फिर भी खेती-किसानी से जुड़ी हर योजना को ऑनलाइन और हर पेमेंट को इलेक्ट्रोनिक करने की जिद बढ़ती जा रही है। ज्यादातर राज्यों ने न्यूनतम समर्थन मूल्य पर सरकारी खरीद के लिए ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन अनिवार्य बना दिया है। इसके चलते बड़ी संख्या में किसान अपने अधिकार से वंचित हो रहे हैं। सरकारी खरीद या बीमा या आपदा राहत के तमाम भुगतान इलेक्ट्रोनिक किए जाते हैं। आरटीजीएस से पेमेंट भी एक-दो हफ्ते बाद पहुंचता है। किसान का भुगतान कई बार किसी दूसरे के खाते में चला जाता है। काले धन को रोकने के नाम पर दस हजार रुपये से अधिक का भुगतान कैश में करने पर लगी पाबंदी किसानों की मुसीबत बढ़ा रही है।

सन्दर्भः सरकारी सूचनाएं *https://www.enam.gov.in/enam/ पर उपलब्ध हैं। इसके विश्लेषण के लिए देखें: "Why the eNAM platform hasnlt taken off despite all the fanfare", The Hindu Business Line, 18 July 2017.*

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 49

अध्याय चार

आपदा के वक्त क्या किया?

वादों और दावों की समीक्षा के बाद अब एक न्यूनतम अपेक्षा की कसौटी पर मोदी सरकार को कसा जाना चाहिए। किसी सरकार से किसान की यह अपेक्षा तो होती ही है कि वह उसकी खुशहाली और कल्याण के लिए नई योजनाएं बनाए, स्थापित योजनाओं का लाभ किसान तक पहुंचाए। लेकिन पुराने जमाने से आज तक किसी भी सरकार से किसान की एक न्यूनतम अपेक्षा यह रहती है कि जैसी भी सरकार हो, कम से कम किसी आपदा के समय तो वह किसान की मदद के लिए खड़ी हो। मोदी सरकार के राज में किसान को तीन राष्ट्रव्यापी आपदाओं का सामना करना पड़ा। इनमें से एक आपदा तो प्राकृतिक थी जिसके लिए सरकार को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। मोदी सरकार के पहले दो वर्ष में देश-भर में सूखा पड़ा, जिसका कृषि पर गहरा असर पड़ा। दूसरी आपदा बाजार से आई थी। सन 2016-17 और 2017-18 में कृषि उत्पादों के मूल्य अचानक गिर गए, जिससे किसानों की आय को बड़ा धक्का लगा। तीसरी आपदा थी नोटबंदी, जो पूरी तरह सरकारी आपदा थी। इसका किसान की आर्थिक स्थिति, फसलों के बाजार और फसलों के दाम पर गहरा असर पड़ा। आइए देखते हैं कि इन आपदाओं का मुकाबला करने के लिए मोदी सरकार ने किस हद तक किसान की मदद की।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 50

4.1 राष्ट्रव्यापी सूखे में सरकार की बेरुखी

सन 2014-15 और 2015-16 में पड़ा राष्ट्रव्यापी सूखा कई मायनों में अभूतपूर्व था। पिछले सौ सालों में यह सिर्फ तीसरी बार हुआ कि देश के बड़े भू-भाग में लगातार दो साल सूखा पड़ा। इस सूखे ने गांव और खेती-किसानी की कमर तोड़ दी। **स्वराज अभियान ने सुप्रीम कोर्ट में हलफनामा देकर यह साबित किया कि सन 2015-16 के सूखे का असर देश की 52 करोड़ जनसंख्या पर पड़ा था।** देश के अनेक इलाकों में सिंचाई ही नहीं, पीने के पानी तक का संकट खड़ा हो गया। पानी की कमी से बारानी खेती वाले अधिकांश इलाकों में फसलों का उत्पादन गिरा और उसके चलते किसान की आमदनी भी गिरी। अकाल की स्थिति तो नहीं आई, लेकिन गांव के सबसे गरीब और हाशिये पर जीने वाले तबके को खाद्यान्न की कमी का सामना करना पड़ा। उत्तर भारत के एक बड़े इलाके में पशुओं के लिए अकाल की स्थिति बनी, न जाने कितनी गायें और बकरियां मरीं। जाहिर है, जब किसान की कमाई नहीं थी तो वह अपना ऋण कैसे लौटाता। तिस पर बैंकों ने नया लोन देने में ना-नुकुर शुरू कर दी। यह पिछले तीन दशक में खेती-किसानी का सबसे बड़ा संकट था।

सूखे की इस विभीषिका को इस लेखक ने स्वयं अपनी आंखों से देश के अलग-अलग कोने में देखा। अक्टूबर 2015 में 'संवेदना यात्रा' के नाम से इस लेखक ने स्वराज अभियान की टीम के साथ कर्नाटक, तेलंगाना, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा के सूखाग्रस्त जिलों की यात्रा की। दिसंबर 2015 और फरवरी 2016 में बुंदेलखंड में सूखे के परिणामों का जायजा लिया और देश को उसके दुष्परिणामों के बारे में चेताया। मई 2016 में मराठवाड़ा और बुंदेलखंड के गांव-गांव में 'जल-हल' पदयात्रा की। आसमानी और सुलतानी दोनों तरह की मार के असर से देश के कई इलाकों में त्राहि-त्राहि मची थी। मराठवाड़ा में जल संकट का फायदा पानी माफिया उठा रहा था। जहां पीने का पानी नहीं था, वहां बोतलबंद पानी और कैंटर में पानी सप्लाई करने का धंधा फल-फूल रहा था। बुंदेलखंड में जानवरों के लिए

अकाल था। लेकिन सरकार की तरफ से चारे की न्यूनतम व्यवस्था भी नहीं थी। इस संकट में किसान जमीन बेच रहे थे, पशु बेच रहे थे और बड़ी संख्या में गांव छोड़कर शहरों की ओर मजदूरी के लिए पलायन कर रहे थे। हमने अनेक गांव देखे जहां बुजुर्गों और बच्चों को छोड़कर कोई नहीं था। घरों में ताले लगे थे। ऐसी घड़ी में किसान सरकार की ओर देखता है, उससे राहत की उम्मीद करता है। लेकिन हमने इस संकट की घड़ी में सरकार को नदारद पाया, सरकारी बाबुओं को फाइलों के खेल खेलते देखा।

हमारे देश की संवैधानिक व्यवस्था के हिसाब से आपदा प्रबंधन केंद्र सरकार की जिम्मेवारी है। सन 2009 में अंग्रेजों के जमाने की 'अकाल राहत संहिता' की जगह केंद्र सरकार ने 'सूखा प्रबंधन संहिता' (मैनुअल ऑफ ड्राउट मैनेजमेंट) बनाई थी। इसके मुताबिक सूखे की स्थिति में केंद्र सरकार को राहत और बचाव के निम्न महत्वपूर्ण कामों की जिम्मेदारी सौंपी गई है:

- पहला, समय रहते सूखे का पूर्वानुमान करना और उसके बारे में राज्यों को आगाह करना।
- दूसरा, सूखे की घोषणा करने और सूखे से निपटने के लिए दिशा-निर्देश बनाना।
- तीसरा, राज्यों को आपदा प्रबंधन के लिए पर्याप्त फंड उपलब्ध करवाना ताकि सूखा प्रभावित लोगों की बुनियादी जरूरतों की पूर्ति हो सके।
- चौथा, सूखा राहत के प्रयासों का संयोजन और समीक्षा करना।
- पांचवां, दीर्घकाल में सूखे से बचाव के इंतजाम करना।

मोदी सरकार इस नैतिक और संवैधानिक जिम्मेवारी का निर्वाह करने में असफल रही। यह वो दौर था, जब मोदी जी का जादू सर चढ़कर बोल रहा था। मोदी जी देश में चुनाव पर चुनाव जीत रहे थे, दुनिया-भर के दौरे करके वाहवाही लूट रहे थे। अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल के दाम गिरने का श्रेय भी ले रहे थे। कहते थे कि मैं खुशनसीब प्रधानमंत्री हूं, देश के लिए खुशी और सौभाग्य लाया हूं। ऐसे में किसान

की बदनसीबी उनकी नजर से ओझल हो गई। सूखे के सवाल पर सरकार की बेरुखी से त्रस्त आकर दिसंबर 2015 में स्वराज अभियान को सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा खटखटाना पड़ा। श्री प्रशांत भूषण के माध्यम से दायर की गई इस याचिका में स्वराज अभियान ने सुप्रीम कोर्ट से अनुरोध किया कि वह केंद्र सरकार और 11 राज्य सरकारों को सूखा राहत की अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करने के लिए बाध्य करे। इस ऐतिहासिक याचिका के साथ स्वराज अभियान ने तमाम सरकारी दस्तावेज पेश करते हुए यह साबित किया कि केंद्र सरकार ने अपनी ही सूखा प्रबंधन संहिता का हर कदम पर उल्लंघन किया है।

केंद्र सरकार के पास तमाम आंकड़े होने के बावजूद वह सूखे के बारे में राज्यों को आगाह करने में असफल रही। सूखे की घोषणा करने में राज्य सरकारों ने मनमानी की और कोताही बरती। इनमें गुजरात और हरियाणा सरकार ने तो हर नियम-कानून को ताक पर रख दिया। लेकिन केंद्र सरकार मूकदर्शक बनी रही। आपदा राहत के नाम पर सरकार ने केवल एक काम किया। पहले किसी गांव या ग्राम पंचायत को सूखाग्रस्त घोषित करने के लिए फसल का कम से कम 50 प्रतिशत नुकसान अनिवार्य माना जाता था। इस सीमा को घटाकर अब 33 प्रतिशत कर दिया गया। साथ ही किसानों को आपदा राहत में दी जाने वाली राशि में मामूली बढ़ोत्तरी की गई। लेकिन इस कागजी सुधार का फायदा भी किसानों तक नहीं पहुंचा क्योंकि केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय आपदा कोष से राज्यों को सहायता देने में बहुत देरी की। केंद्र सरकार को आपदा प्रबंधन कानून के तहत राष्ट्रीय आपदा नीति तैयार रखनी थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। राष्ट्रीय आपदा कार्रवाई बल तो था, लेकिन उसके पास सूखे से निपटने की तैयारी और समझ नहीं थी। **रिजर्व बैंक ने पहले से स्पष्ट निर्देश दे रखे थे कि सूखे के समय किसानों से कर्ज वसूलना बंद किया जाए और उन्हें खुले हाथ से नया कर्ज दिया जाए।** लेकिन न तो कर्ज की वसूली बंद हुई, न ही कर्ज को मुल्तवी किया गया और अधिकतर बैंकों ने आड़े वक्त में किसानों को नया कर्ज देने से इनकार कर दिया। सन 2014-15 और 2015-16 का सूखा आंकड़े की दृष्टि

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 53

से देश का सबसे भयानक सूखा नहीं था। लेकिन सरकारी बेरुखी और बदइंतजामी के लिहाज से यह साठ के दशक के भयंकर सूखे के बाद देश का सबसे दारुण सूखा था।

सुप्रीम कोर्ट में चले इस ऐतिहासिक मुकदमे के दस्तावेजों में सरकार की बेरुखी, बदनीयती और बदइंतजामी के प्रमाण दर्ज हैं। कोर्ट के बाहर प्रचार के वास्ते सरकार किसानों के लिए हमदर्दी जताती रही और हरसंभव सहायता करने का वादा करती रही। लेकिन कोर्ट में मोदी सरकार ने सूखा राहत और बचाव की जिम्मेवारी से पल्ला झाड़ लिया। सरकार ने सुप्रीम कोर्ट में दिए अपने हलफनामे में कहा कि सूखा राहत राज्य सरकारों की जिम्मेवारी है; केंद्र सरकार जो कर सकती थी, उसने कर दिया; इससे ज्यादा करने के लिए उसके पास पैसा नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने 11 और 13 मई 2016 को अपने ऐतिहासिक निर्णय में केंद्र सरकार को आड़े हाथों लिया। न्यायमूर्ति मदन लोकुर और न्यायमूर्ति एमवी रामन्ना के खंडपीठ ने केंद्र सरकार के इस 'शुतुर्मुर्गी रुख' की आलोचना करते हुए कहा कि वह अपनी संवैधानिक जिम्मेवारियों से बचने की कोशिश कर रही है। बात यहीं नहीं रुकी। **सुप्रीम कोर्ट के स्पष्ट निर्देशों के बावजूद केंद्र सरकार ने सूखा राहत के निर्देशों को ठीक से लागू नहीं किया।** सूखा प्रभावित सभी इलाकों में हर व्यक्ति को राशन की दुकान से खाद्यान्न देने का आदेश लागू नहीं हुआ। मनरेगा के तहत जरूरी फंड नहीं दिए गए। मजदूरों को मजदूरी देने में देरी चलती रही। फसल के नुकसान का मुआवजा सिर्फ चंद किसानों तक पहुंचा। बैंकों ने फसली ऋण को मुल्तवी करने में कोताही जारी रखी। सुप्रीम कोर्ट के आदेशों की अवमानना पर स्वराज अभियान को फिर मुकदमा करना पड़ा, जिसकी सुनवाई अभी जारी है।

*सन्दर्भः **सूखा होने पर सरकार** को क्या करना चाहिए यह Manual for Drought Management में विस्तार से बताया गया है। इसका पहला संस्करण 2009 में छपा था और फिर स्वराज अभियान केस में आदेश के बाद इसका नया संस्करण 2017 में छपा है। मोदीराज में हुए सूखे और उसमे सरकार की कारगुजारी की सूचना यहाँ स्वराज अभियान बनाम भारत सरकार (Swaraj Abhiyan vs. Union of India and others", Writ Petition 857 of 2015) मुकदमे में स्वराज अभियान द्वारा दायर अर्जी से ली गई है। इस केस में सुप्रीम कोर्ट के आदेश https://indiankanoon.org/doc/53698039/ पर उपलब्ध हैं। सूखे के दौरान यात्रा के अनुभव और उसके निष्कर्ष के लिए देखें Yogendra Yadav "Footsteps of a Famine", Outlook, 6 February 2016*

4.2 मंदी में किसान लुटता रहा, सरकार देखती रही

किसानों को सूखे से निजात मिली तो उनके सिर एक नई मुसीबत आ पड़ी। सन 2016-17 और 2017-18 में बारिश अच्छी हुई, बम्पर पैदावार हुई, लेकिन फसलों के दाम अचानक गिर गए। दो साल से प्राकृतिक आपदा झेल रहे किसान उम्मीद लगाए बैठे थे कि इस साल अच्छी फसल के चलते उन्हें कुछ बचत होगी। घर के जो खर्चे वाले काम टाल रखे थे, उन्हें इस बार करने की योजना बनाए बैठे थे। लेकिन मंडी से वापस आए तो उनके हाथ कुछ नहीं लगा। ऐसे में सरकार हाथ पर हाथ धरे बैठी रही। हर साल की तरह बदस्तूर फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित कर दिए। किसान को मंडी में वो दाम मिले या नहीं, इससे सरकार का कोई वास्ता नहीं था। नवंबर 2017 में खरीद के समय आठ बड़ी फसलों में से सात का बाजार भाव सरकारी न्यूनतम समर्थन मूल्य से बहुत नीचे चल रहा था। किसान लुट रहे थे, सरकार सोई हुई थी। मक्का का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1425 रु. था, लेकिन औसत बाजार भाव सिर्फ 1162 रु., धान का न्यूनतम समर्थन मूल्य 1550 रु. था, जबकि औसत बाजार भाव 1431 रु.। यहां औसत बाजार भाव का हिसाब सरकारी वेबसाइट पर दिए गए मंडियों के आंकड़ों पर आधारित है। वास्तव में किसानों को वेबसाइट में दर्ज किया गया दाम भी नहीं मिला था।

किसान नेता और कृषि विशेषज्ञ किरण विस्सा और कविता कुरुगंति ने सरकारी आंकड़ों के आधार पर अनुमान लगाया कि 2017-18 की खरीफ की फसल की बिक्री में किसानों की कुल मिलाकर 32,702 करोड़ रुपये की लूट हुई। यानी कि किसानों को सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य से भी कम भाव पर फसल बेचने की वजह से इतनी राशि का नुकसान हुआ। इस हिसाब में अभी सब्जी, फल, दूध जैसे उत्पाद शामिल नहीं हैं, चूंकि इनके लिए सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित नहीं करती। इसी दौर में आलू, प्याज, सब्जियों और दूध का दाम भी गिरा। अप्रैल-मई 2018 में इस लेखक ने स्वयं आठ राज्यों की मंडियों का दौरा किया और यह पाया कि सरकारी समर्थन मूल्य

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 55

किसान को अपवादस्वरूप ही हासिल हो पा रहा था।

किसान की इस दुर्दशा के बारे में अखबारों में लिखा जा रहा था, किसान संगठन सरकार को चेता रहे थे। **स्वराज अभियान प्रतिदिन 'किसान की लूट' के आंकड़े प्रकाशित कर रहा था। लेकिन सरकार ने बाजार में दखल देकर किसान को बचाने की कोई प्रभावी कोशिश नहीं की।** हमेशा की तरह सरकारी खरीद सिर्फ गेहूं और धान तक सीमित रही, और वह भी चंद राज्यों में। केंद्र सरकार के बजट में किसान को बाजार की मार से बचाने के लिए मूल्य समर्थन योजना जैसे प्रावधान तो थे, लेकिन उनमें नाममात्र का पैसा दिया गया था। अगर बजट में पैसा था तो उपभोक्ता को बचाने के लिए। दाल और सब्जी महंगी न हो जाए, इस उद्देश्य से सरकार ने बाजार में दखल दिया। इस दौरान सरकार ने केवल दालों की सरकारी खरीद में वास्तविक बढ़ोत्तरी की। सरकार के मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविंद सुब्रमण्यम की अध्यक्षता में बनी समिति ने सिफारिश की कि देश में दाल की कमी और दाल के दाम में अचानक तेजी आने से रोकने के लिए सरकार को दालों का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाना चाहिए और उसकी खरीद भी करनी चाहिए। इसके चलते 2017-18 में सरकार ने दालों की कुल पैदावार का कोई 16 प्रतिशत सरकारी खरीद में दिया। लेकिन याद रहे कि यह कदम भी उपभोक्ता को बचाने के लिए उठाया गया था, किसान को बचाने के लिए नहीं। कुल मिलाकर इन दो वर्षों को भारतीय कृषि के इतिहास में किसान की बरबादी के लिए याद किया जाएगा। किसान संगठनों ने इसे 'किसान की लूट, एमएसपी का झूठ' की संज्ञा दी।

*सन्दर्भ: **फसलों के भाव गिराने से किसान** को कितना नुकसान हुआ उसका आंकलन "Green paper on farm, farming and rural economy" में किया गया है जिसका लिंक http://www.kisanswaraj.in/2018/01/30/green—paper—on—farmers—farming—rural—economy—2018/ है। स्वराज अभियान के जय किसान आंदोलन ने एमएसपी सत्याग्रह के तहत 14 से 30 मार्च 2018 को देश के आठ राज्यों में मंडियों का दौरा कर नीति आयोग के उपाध्यक्ष को प्रतिवेदन सौंपा था।*

4.3 रही सही कसर नोटबंदी ने पूरी कर दी

मोदी राज के दौरान किसान पर आई तीसरी आपदा थी नोटबंदी। जब 8 नवंबर, 2016 की रात को प्रधानमंत्री ने 500 और 1000 रुपये

के नोट को तत्काल प्रभाव से बंद करने की घोषणा की तो किसान के सिर पर गाज गिरी। खेती-किसानी की दृष्टि से यह सबसे गलत समय था। किसान सूखे से उबरा ही था। खरीफ की कटाई हो चुकी थी। फसल मंडी में आ रही थी। रबी की बुवाई शुरू हुई थी। किसान को आढ़ती से कुछ कैश मिल रहा था, कुछ मिलना बाकी था। नई फसल की बिजाई के समय बीज, खाद, मजदूरी के लिए कैश की जरूरत थी। दिवाली के बाद कई महीनों के रोके हुए खर्च करने थे। शादी-ब्याह का मौसम शुरू होने वाला था। लेकिन खेती-किसानी की चिंता इस सरकार के दृष्टि पटल पर थी ही नहीं। **नोटबंदी के फलस्वरूप अचानक किसान और आढ़ती के हाथ से कैश गायब हो गया। मंडी में मांग एकदम गिर गई।** सब्जी, फल की मांग गिरने से उनके दाम भी गिरे और बर्बादी भी बढ़ी। आलू के दाम रातोंरात आधे से भी कम हो गए। नोटबंदी के कुछ ही दिन में ग्रामीण और सहकारी बैंकों को नोट बदलने से रोक दिया गया। इन बैंकों के मुख्य ग्राहक किसान ही थे। इससे किसानों को जो तकलीफ हुई वो तो अलग है, उन्हें दीर्घकालिक आर्थिक नुकसान भी हुआ। गेहूं, सरसों और चने की फसल बोने वाले किसानों को बीज की उपलब्धता में दिक्कत हुई। कपास और जूट के व्यापार को धक्का लगा। कुछ हफ्तों के लिए सब्जी और फल का बाजार लगभग ठप पड़ गया, चूंकि ट्रांसपोर्टर खाली बैठे रहे। बागानों में काम कर रहे मजदूरों को मजदूरी नहीं मिली। कृषि विशेषज्ञों का मानना है कि नोटबंदी के इस तुगलकी फरमान का असर कुछ हफ्तों या कुछ महीनों तक सीमित नहीं रहा। मंडी में कैश न होने और फलस्वरूप मांग में कमी का असर दो साल तक दिखाई दिया। कृषि क्षेत्र में मंदी की स्थिति बनाने में सरकार के इस फैसले का बहुत बड़ा हाथ था।

कृषि पर नोटबंदी *के असर को व्यवस्थित रूप से हरीश दामोदरन ने इंडियन एक्सप्रेस में अपनी खबरों और विश्लेषण के जरिये दर्ज किया है। देखें Harish Damodaran, Farm Crisis Redux, Seminar, January 2018*

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 57

अध्याय पांच

कृषि नीति से नफा या नुकसान?

अब तक हमने मोदी सरकार के वादों, दावों और मदद के रिकॉर्ड की जांच की है। हमने पाया कि किसानों की भलाई के इसके वादे खोखले निकले, इसके दावों में सच्चाई नहीं है। और तो और, किसानों के संकट के वक्त भी यह सरकार उनके साथ खड़ी नहीं हुई। लेकिन कहानी सिर्फ इतनी नहीं है कि मोदी सरकार ने किसान का जितना फायदा करना चाहिए था वह नहीं किया, कहानी यह भी है कि इस सरकार ने अपने कई फैसलों से किसान का नुकसान किया। यह सरकार कुछ न करती तब भी किसान आज से बेहतर हालत में होता!

जिस सरकार को किसान से हमदर्दी नहीं, उसके हर छोटे-बड़े फैसले में किसान-विरोधी अंश रहता है। लेकिन यहां हम उन पांच प्रमुख नीतियों और फैसलों का जिक्र करेंगे जिनके चलते मोदी राज में किसानों को नुकसान हुआ है। पहला, इस सरकार ने खेती का लागत-मूल्य बढ़ाने का काम किया है। दूसरा, इस सरकार की आयात-निर्यात नीतियां किसान के विरुद्ध रही हैं। तीसरा, सरकार ने मनरेगा योजना का गला घोंटने की कोशिश की है। चौथा, पशुधन की अर्थव्यवस्था को धक्का पहुंचा कर इस सरकार ने किसान के सुरक्षा-कवच को कमजोर किया है। पांचवां, भूमि अधिग्रहण कानून को खत्म करने की साजिश से इस सरकार की किसान विरोधी नीयत स्पष्ट हो जाती है। और छठा, इस सरकार ने आदिवासी किसानों से जल, जंगल और जमीन छीन कर उनका आखिरी सहारा भी तोड़ा है।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 58

5.1 खेती की लागत घटाने के बजाय बढ़ाई

जहां एक तरफ किसान को अपनी फसल का दाम नहीं मिल रहा है, वहीं दूसरी ओर उसकी उत्पादन लागत बढ़ती जा रही है। इसका एक प्रमुख कारण है खाद, बीज और डीजल की सरकारी नीति। प्रधानमंत्री अकसर दावा करते हैं कि उनकी सरकार ने किसान को यूरिया उपलब्ध कराया है। वे अकसर याद दिलाते हैं कि एक जमाना ऐसा था जब किसान को यूरिया के लिए लाइन लगानी पड़ती थी। वे दावा करते हैं कि उनकी सरकार ने ही इसे खत्म किया। लेकिन वे भूल जाते हैं कि यूरिया का सबसे बड़ा संकट उनकी सरकार के दौरान और उनकी अपनी नीतियों के कारण पैदा हुआ था। मोदी सरकार ने आते ही यूरिया के आयात में भारी कटौती की थी, जिसके कारण 2014-15 की रबी की फसल के मौसम में यूरिया की भारी किल्लत पैदा हो गई थी। कुछ जगह तो पुलिस थानों में किसानों की लाइन लगाकर यूरिया दिया गया था। 2018 में फिर यूरिया की किल्लत पैदा हो गई है। पेट्रोलियम पदार्थ की कीमत चढ़ने के कारण सरकार ने चुपचाप से आयात में कटौती कर दी है। रबी 2018 की बुवाई में किसानों को लाइन लगानी पड़ रही है। ब्लैक मार्किट शुरू हो गई है। बाकी वस्तुओं की कीमत भी बढ़ रही है। डीएपी और पोटाश की कीमतों में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है। **2017 और जुलाई 2018 के बीच डीएपी का दाम 280 फीसदी और पोटाश का दाम 350-400 रुपये प्रति बोरी बढ़ा है।** कीटनाशक के दाम भी एक-तिहाई बढ़ गए हैं। सरकार कहती है कि इसका कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में इनके दाम में हुई बढ़ोतरी है, लेकिन इसके साथ–साथ डॉलर के मुकाबले रुपए का कमजोर होना भी एक महत्वपूर्ण कारण है।

डीजल का दाम एक साल में 57 रुपये प्रति लीटर से बढ़कर 75 रुपये प्रति लीटर हो गया। डीजल के दाम में बढ़ोतरी को सरकार अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत बढ़ने से जोड़ती है। यह बात भी अर्ध-सत्य है। पूरा सच यह है कि मोदी सरकार आने के बाद अंतरराष्ट्रीय बाजार में कच्चे तेल की कीमत में भारी गिरावट हुई। मई 2014 में अंतरराष्ट्रीय बाजार से खरीदे कच्चे तेल का दाम 106 डॉलर प्रति बैरल (ड्रम) था। उस वक्त दिल्ली में डीजल 55 रुपये लीटर था।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 59

फरवरी 2016 में कच्चे तेल की कीमत प्रति बैरल 30 डॉलर पर आ गई थी। लेकिन इस दौर में मोदी सरकार और राज्य सरकारों ने मिलकर डीजल पर टैक्स बढ़ा दिए और इसे अपनी अतिरिक्त कमाई का जरिया बना लिया। नतीजा यह कि कच्चे तेल का दाम एक तिहाई से भी कम हो जाने के बावजूद देश में डीजल का दाम 55 रुपये से घटकर सिर्फ 45 रुपये हुआ। लेकिन जब कच्चे तेल की कीमतें बढ़ने लगीं तो सरकार ने सारा बोझ सीधे उपभोक्ता यानी किसान के कंधों पर डाल दिया। अक्टूबर 2018 में कच्चे तेल की कीमत 76 डॉलर प्रति बैरल थी, लेकिन डीजल का दाम 75 रुपये प्रति लीटर हो गया। यहां यह भी गौरतलब है कि पिछले चार सालों में पेट्रोल की कीमत में बढ़ोतरी की तुलना में डीजल की कीमत में बढ़ोतरी ज्यादा हुई है। इस दौरान पेट्रोल पर एक्साईज ड्यूटी का टैक्स 2.1 गुना बढ़ा, लेकिन डीजल पर टैक्स 4.4 गुना बढ़ाया गया। इसके कारण शहरी उपभोक्ता की तुलना में किसान और मछुआरे पर बहुत ज्यादा बोझ पड़ा है। एक विश्लेषण के अनुसार खेती की लागत में बढ़ोत्तरी का कुल असर यह हुआ है कि एक साल में गेहूं उगाने वाले किसान की प्रति एकड़ लागत 3,000 रुपये बढ़ गई है। अगर एमएसपी में बढ़ोत्तरी का कोई फायदा होता भी तो वह भी बराबर हो गया।

__सन्दर्भः खेती की लागत__ में वृद्धि के आंकड़े और विश्लेषण पर इंडियन एक्सप्रेस में हरीश दामोदरन के कई लेख हैं। मोदी सरकार के पहले साल में यूरिया के दाम में बढ़ोतरी पर देखें: Harish Damodaran, "Govt delays urea imports, farmers left in distress", Indian Express, 16 February 2015. पिछले एक साल में खाद और डीज़ल के दाम में बढ़ोतरी का किसान पर असर समझने के लिए देखें: Harish Damodaran, "As global prices soar, farmers pay more for fertilisers", Indian Express, 9 August 2018; "Diesel pain erode MSP gains for the farmers", Indian Express, 6 September 2018.

तालिका 6 : कृषि निर्यात की दुर्दशा
(आयात, निर्यात और सरप्लस, 2008-09 से 2017-18)

वित्तीय वर्ष	2008-09	2013-14	2014-15	2015-16	2016-17	2017-18
निर्यात	75,400	268,700	245,500	222,500	233,600	257,000
आयात	36,900	109,700	144,800	163,300	185,300	175,800
सरप्लस	45,100	159,000	100,600	59,200	48,300	82,000

नोट : सभी आंकड़े करोड़ रुपये में हैं। सरप्लस=निर्यात-आयात।
स्रोत : रबी फसलों की मूल्य नीति, विपणन मौसम, 2019-20

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 60

5.2 कृषि निर्यात बढ़ने के बजाय घटा

जब देश में कृषि बाजार में मंदी हो और फसलों के दाम गिर रहे हों, तो ऐसे में किसान के पास विदेशों में निर्यात का एक मौका होता है। दाम गिरने की वजह से निर्यात बढ़ने की संभावना हो जाती है। लेकिन मोदी सरकार की नीतियों के चलते पिछले पांच साल में निर्यात बढ़ने के बजाय घटा है।

सन 2004 के बाद से भारत के कृषि निर्यात ने छलांग लगानी शुरू की। जो कृषि निर्यात सन 2004 में 40 हजार करोड़ रुपये से भी कम था, वह 2008 में 75 हजार करोड़ रुपये से अधिक हुआ और पांच साल बाद 2013 में 2 लाख 68 हजार करोड़ रुपए तक जा पहुंचा। इस बीच आयात भी बढ़ा, लेकिन कुल मिलाकर इन दस वर्षों में निर्यात-आयात सरप्लस दस गुना बढ़ा। मोदी सरकार आने के बाद यह बढ़ोत्तरी रुक गई। बढ़ने के बजाय निर्यात घट गया और पिछले चार साल में एक भी बार उस स्तर तक नहीं पहुंचा जहां वह 2013-14 में पहुंच चुका था। उधर आयात बढ़ता रहा और इसके फलस्वरूप आयात निर्यात का सरप्लस घटकर आधे से भी कम रह गया। **सन 2016-17 में तो हालत यह हो गई कि निर्यात घटकर 2 लाख 33 हजार करोड़ था, आयात बढ़कर 1 लाख 85 हजार करोड़ था और सरप्लस सिर्फ 48 हजार करोड़ रह गया।** किसान को भी नुकसान हुआ, देश को भी नुकसान हुआ। लेकिन सरकार की जुमलेबाजी बदस्तूर जारी रही। सरकार निर्यात को तीन लाख करोड़ रु. तक भी पहुंचाने में असमर्थ रही, मगर कृषि मंत्री निर्यात को बढ़ाकर सात लाख करोड़ रुपए तक पहुंचाने का लक्ष्य घोषित कर रहे हैं। लेकिन अपने राज के दौरान नहीं। इसका लक्ष्य भी सन 2023 का रखा गया है!

इस सरकार की नजर में सबसे पहले उपभोक्ता है और सबसे अंत में उत्पादक। जब-जब किसी खाद्यान्न में किसान को अंतरराष्ट्रीय बाजार में बेहतर दाम मिलने का मौका होता है तब-तब देश में महंगाई का डर दिखाकर सरकार निर्यात पर पाबंदियां लगा देती है। लेकिन जब किसान को देश की अपनी मंडी में बेहतर दाम मिलने की संभावना होती है, तब सरकार बड़े पैमाने पर आयात कर फसलों के दाम समुचित स्तर पर पहुंचने से रोक देती है। मोदी सरकार ने सत्ता में आते ही आलू का न्यूनतम

निर्यात मूल्य निर्धारित कर दिया था, यानी कि किसान अपना आलू सस्ते दाम पर विदेश में बेच नहीं सकते थे। लेकिन जब हमारे यहां दाल की कीमत बढ़ने लगी तब सरकार ने जिम्बाबवे और कनाडा से ताबड़तोड़ आयात किया। वह सरकार जो हमारे किसान को दाल का 50 रु. प्रति किलो देने को तैयार नहीं थी, उसने विदेशों से 70 से 90 रु. प्रति किलो के भाव से दाल का आयात किया था।

*सन्दर्भः **कृषि आयत और निर्यात** के सभी आंकड़े कृषि उत्पाद लागत और मूल्य आयोग (CACP) की नवीनतम रिपोर्ट से लिए गए हैं। निर्यात में गिरावट के विश्लेषण के लिए देखें: Ashok Gulati and Shweta Saini, "Freeing the Farm", Indian Express, April 16, 2018; Harish Damodaran, Farm Crisis Redux, Seminar, January 2018; Ajay Vir Jakhar, "Potato Portents", Indian Express, 23 January 2018.*

5.3 मनरेगा के विस्तार के बजाय गला घोंटने का प्रयास

बड़े किसान के साथ–साथ मोदी सरकार ने छोटे किसान और खेतिहर मजदूर को भी धक्का पहुंचाया है। आज देश के अधिकतर किसान या तो बहुत छोटी जोत वाले हैं या फिर बटाई या ठेके पर खेती करते हैं। ऐसे किसान और खेत मजदूर काफी हद तक सरकारी मनरेगा स्कीम से मिलने वाली मजदूरी पर निर्भर करते हैं। मनरेगा से ग्रामीण मजदूर की दिहाड़ी ठीक स्तर पर बनी रहती है। सत्ता में आने के बाद प्रधानमंत्री मोदी ने अपना सीधा निशाना इस स्कीम पर साधा। उन्होंने खुल्लमखुल्ला कहा था कि यह एक बेकार स्कीम है और इसे वे पिछली सरकार के नाकारेपन के नमूने के रूप में बचा कर रखेंगे। इसलिए शुरू से ही **मोदी सरकार ने मनरेगा के आवंटन में कटौती शुरू कर दी। देश में सूखे के बावजूद 2014-15 में मनरेगा के तहत औसत प्रति परिवार रोजगार पिछले वर्ष की तुलना में 46 दिन से घटकर 40 दिन रह गया।** इसका असर खेत मजदूर की दिहाड़ी पर पड़ा, जो कि 2015 की रबी के दौरान 2.1 फीसदी घट गई। लेकिन उसके बाद स्वराज अभियान के द्वारा सुप्रीम कोर्ट में दायर मुकदमे के ऐतिहासिक निर्णय के कारण मोदी सरकार को मनरेगा स्कीम में पैसा डालना पड़ा। प्रधानमंत्री ने इसके बाद दावा करना शुरू किया कि उनकी सरकार इस योजना को पिछली सरकार से बेहतर लागू कर रही है!

अब सरकार दावा करती है कि उसने मनरेगा योजना के आवंटन में ऐतिहासिक वृद्धि की है। वर्ष 2018-19 में केंद्र सरकार ने 55,000

करोड़ रु. आवंटित किये हैं, जो किसी भी वर्ष से ज्यादा है। इस सरकार के बाकी दावों की तरह यह भी अर्ध-सत्य है। मनरेगा स्कीम के फंड में बढ़ोतरी तभी दिखती है अगर हम महंगाई को ध्यान में न रखें। वास्तव में यदि राष्ट्रीय आय के हिस्से के रूप में देखें तो मनरेगा के आवंटन में कमी आई है। सन 2010-11 में मनरेगा को राष्ट्रीय आय का 0.53 फीसदी धन आवंटित हुआ था, जो कि सन 2017-18 में घटकर 0.42 फीसदी रह गया। अगर इसे ग्रामीण विकास मंत्रालय के बजट के अंश के रूप में देखें तो 2012-13 में यह 55 फीसदी था, लेकिन 2018-19 में 48 फीसदी रह गया। जनसंख्या के साथ-साथ रोजगार की जरूरत बढ़ रही है, लेकिन मनरेगा के तहत रोजगार जस का तस है। **मनरेगा के तहत 100 दिन का रोजगार पाने वाले परिवारों की संख्या घटी है। 2012-13 में रोजगार पाने वाले परिवारों में 10 फीसदी को पूरे 100 दिन का रोजगार मिला था, जो 2017-18 में घटकर 6 फीसदी रह गया।** हर वित्तवर्ष के अंत में मनरेगा योजना में बहुत बड़ा बकाया रह जाता है, जिसकी वजह से साल के अंत में सभी राज्य और रोजगार का सृजन रोक देते हैं। मोदी सरकार के राज में यह बकाया बढ़ता गया है। 2015-16 के अंत में 6,355 करोड़ रुपये बकाया थे तो 2017-18 के अंत तक 12,601 करोड़ रुपये बकाया थे। साथ ही, मनरेगा के तहत मजदूरी के भुगतान में अनेक समस्याएं पेश आ रही हैं। अकसर भुगतान में इतनी देर हो रही है कि मजदूर तंग आकर काम नहीं करना चाहता। सरकार ने 2017 में दावा किया कि 85 फीसदी मजदूरी समय पर दी जा रही है। मगर जब गैर-सरकारी अर्थशास्त्रियों ने इसकी जांच की तो पाया कि केवल 32 फीसदी भुगतान ही समय पर हुआ था। काम के बावजूद अनेक कारणों से पेमेंट रिजेक्ट हो जाता है, गलत एकाउंट में चला जाता है या फिर बैंक खाते को फ्रीज कर देता है। जब मजदूर को समय पर मजदूरी नहीं मिलती तो वह मनरेगा के काम में दिलचस्पी नहीं लेता। सरकार कहती है मजदूर ही नहीं आते, हम क्या करें ! यही नहीं, कानून के तहत मजदूरी देरी से मिलने पर मजदूर को मुआवजा मिलना चाहिए। मोदी सरकार ने मजदूरों को मिलने वाले मुआवजे को भी कई साल से रोक रखा है। मनरेगा के स्वतंत्र मूल्यांकन ने पाया कि जिन मजदूरों को मुआवजा मिलना चाहिए था उनमें से केवल 14 फीसदी को ही मिला।

सन्दर्भः मनरेगा के सारे आंकड़े *इसकी सरकारी वेबसाइट http://nrega.nic.in/ से लिए गए हैं। स्वराज अभियान के सूखे वाले केस में सुप्रीम कोर्ट में दायर अर्जी से विश्लेषण लिया गया है। मोदीराज में मनरेगा की दशा के विश्लेषण के लिए देखेंः Jean Dreze, "Hollowing Out a Promise", The Indian Express, 13 July 2018; योजना में समय पर भुगतान और मुआवजा के मूल्यांकन के लिए देखेंः Rajendran Narayanan, Sakina Dhorajiwala and Rajesh Golani, "Analysis of Payment Delays and Delay Compensation in NREGA Findings across Ten States for Financial Year 2017—18" https://azimpremjiuniversity.edu.in/SitePages/pdf/PaymentDelayAnalysisWorkingPaper—2018.pdf*

5.4 पशुपालन पर ध्यान के बजाय धक्का

जब किसान संकट में होता है तो पशुधन उसे और उसके परिवार को बचाए रखता है। लेकिन मोदी सरकार के दौरान पशुपालन से किसान को होने वाली आय को दोहरा झटका लगा। दुग्ध उत्पादक को भी खेतिहर किसान जैसे ही संकट का सामना करना पड़ रहा है। **एक ओर तो उसकी लागत बढ़ती जा रही है, लेकिन दूसरी ओर दूध का दाम नहीं बढ़ रहा है। बच्चों को दूध की कमी है, लेकिन देश में दूध के पाउडर का भंडार है, जिसके चलते दूध के दाम गिर रहे हैं।** 2017 में गाय के दूध के 25-28 रुपये मिलते थे, 2018 में उसी दूध के 17-23 रुपये मिल रहे थे। इसके चलते देश के अलग–अलग राज्यों में दुग्ध उत्पादक किसान धरना-प्रदर्शन और हड़ताल को मजबूर हुए हैं। सरकार दुग्ध उत्पादक की मदद करने के बजाय हवाई सपने बेचने में व्यस्त है। सरकारी योजना के अनुसार 2023-24 तक दूध का उत्पादन दोगुना हो जाएगा और उत्पादक की आमदनी तीन गुना! बाकी नारों की तरह यहां भी लक्ष्य इस सरकार के कार्यकाल के परे है और इस योजना को कैसे क्रियान्वित किया जाएगा इसका ब्योरा नहीं है।

दूध के दाम के साथ-साथ पशुधन की कीमत में भी मोदी सरकार की नीतियों की वजह से गिरावट आई है। गोरक्षा के नाम पर देश-भर में गाय की खरीद-फरोख्त करने वालों पर हमले हो रहे हैं, हत्याएं हो रही हैं। **सच यह है कि गोरक्षा का नाम लेने वाली यह सरकार गाय बचाने के प्रति गंभीर नहीं है।** अगर हर साल अंदाजन एक करोड़ गाय और बैल को कटने से बचाना है तो उसके चारे-पानी का इंतजाम कौन करेगा? हर महीने हर पशु के चारे का कम से कम 800 रुपये का खर्च है। यानी हर साल लगभग 10,000 करोड़ रुपये का बजट चाहिए। मोदी सरकार ने न तो गोचर जमीन को बचाने के कोई प्रयास किये, न गोशाला बढ़ाने का

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 64

कोई राष्ट्रीय प्रयास किया। बस गोहत्या के खिलाफ माहौल बनाया और भड़काया। कहने को सरकार ने कानून में कोई बदलाव नहीं किया।

एक बार 2017 में मोदी सरकार ने पशुओं के खिलाफ क्रूरता रोकने के नाम पर पशु बाजार को नियंत्रित करने के लिए नियमों का मसविदा पेश किया था। बाद में उसे वापस तो ले लिया गया, लेकिन देश-भर में आतंक के माहौल के चलते पशु व्यापार में भारी गिरावट आई है। इसके चलते किसान के पशुधन की कीमत गिर गई है। पुष्कर जैसे प्रसिद्ध पशु मेले में गाय और बैल के खरीदार नहीं रहे। साथ ही बूढ़ी गाय और बेकार बैल की बिक्री न होने से हर गांव में आवारा पशुओं की संख्या बेतहाशा बढ़ गई है। ये पशु झुंड बनाकर खेतों पर हमला करते हैं और फसल का नुकसान होता है। पशुओं के हमले से तंग आकर कई इलाकों में किसानों ने फसल बोनी बंद कर दी है।

*सन्दर्भः **दूध उद्योग के संकट** पर देखें Dairy Working Group, The milk crisis in India: The story behind the numbers, Food Sovereignty Alliance, 2015; आवारा जानवर की समस्या पर देखें P. Raman, As Stray Cattle Wreak Havoc on Farmers, Why We Need a Policy for Ageing Cows, The Wire, 8 September 2017.*

5.5 किसान की जमीन बचाने के बजाय छीनने का प्रयास

मोदी सरकार के इन सब कामों से इस सरकार के किसान-विरोधी चरित्र का पता लगता है। लेकिन **अगर कोई एक नीति मोदी सरकार को देश के इतिहास में सबसे किसान-विरोधी सरकार होने का तमगा दिलाती है तो वह है इस सरकार द्वारा किसानों की जमीन और उनके अन्य प्राकृतिक संसाधनों को हड़पने की कोशिश करना।** किसान का भला करना तो दूर की बात है। उसके कल्याण की बात तो छोड़ दीजिए। किन्हीं नीतियों से अनजाने में किसान का नुकसान होना तो और बात है। लेकिन मोदी सरकार ने जान-बूझ कर चौतरफा हमला कर किसान की एकमात्र संपत्ति को छीनने की बार-बार कोशिश की है।

अपने कार्यकाल के पहले ही साल में मोदी सरकार ने सन 2013 के भूमि अधिग्रहण कानून को बदलने की चार बार कोशिश की। यहां ध्यान रहे कि सन 2013 का कानून बहुत लंबी राष्ट्रीय बहस के बाद बीजेपी समेत सभी पार्टियों की सहमति से पास हुआ था। इस कानून के जरिए

अंग्रेजों के जमाने के सन 1894 के भूमि अधिग्रहण कानून को बदला गया था। अंग्रेजों के जमाने का कानून किसान की जमीन जबरदस्ती और बिना समुचित मुआवजे के छीनने का कानून था। 120 साल बाद संसद ने किसान की पीड़ा को समझते हुए इस कानून को बदला था और इसमें अधिग्रहण से पहले किसान को सूचना, उसकी सहमति, पर्यावरण पर असर की जांच, प्रभावित लोगों की सामाजिक सुरक्षा और जमीन के मालिक को समुचित मुआवजे का प्रावधान किया था। यह कानून 1 जनवरी 2014 से लागू हुआ था। बड़ी कंपनियां और उद्योगपति इस कानून से नाखुश थे। वे कहते थे इससे हमारे प्रोजेक्ट की लागत बढ़ जाएगी, हमारा मुनाफा घट जाएगा।

मोदी सरकार ने आते ही इस कानून को निशाना बनाया। उसने दिसंबर 2014 में एक अध्यादेश जारी किया। इस अध्यादेश के जरिए सरकार ने 2013 के कानून में एक बड़ा छेद बनाया। अध्यादेश कहता था कि अगर भूमि अधिग्रहण सुरक्षा, औद्योगिक कॉरिडोर, सस्ते आवास, ग्रामीण इन्फ्रास्ट्रक्चर या सामाजिक सुविधाओं के लिए किया जाए तो उस पर 2013 के कानून के तहत सहमति, सामाजिक सुरक्षा और खाद्य सुरक्षा संबंधी सारे प्रावधान लागू नहीं होंगे। यह छेद इतना बड़ा था कि इस अपवाद के सहारे हर तरह का भूमि अधिग्रहण किया जा सकता था। यानी कि यह अध्यादेश सन 2013 के कानून में संशोधन मात्र नहीं था, यह 2013 के कानून की हत्या थी। चूंकि **मोदी सरकार के पास राज्यसभा में बहुमत नहीं था, इसलिए वह इस अध्यादेश को कानून का स्वरूप नहीं दे पाई। फिर भी सरकार ने एक बार नहीं, चार बार पिछले दरवाजे से यानी अध्यादेश लाकर, सर्वसम्मति से बने भूमि अधिग्रहण कानून को प्रभावहीन बनाने की कोशिश की।** यहां गौरतलब है कि सन 2013 के कानून के उन्हीं हिस्सों को बदलने की कोशिश की गई जिनसे किसान को कुछ फायदा हो सकता था। मोदी सरकार भले ही अपने मकसद में सीधे कामयाब नहीं हो पाई, लेकिन चार बार के अध्यादेश से मोदी सरकार की नीयत के बारे में कोई शक की गुंजाइश नहीं बचती।

संसद में भूमि अधिग्रहण का अपने मनमाफिक कानून पास करवाने में असफल होने के बावजूद व्यवहार में मोदी सरकार ने 2013 के कानून

को लागू नहीं होने दिया। केंद्र सरकार के लिए अधिग्रहण करने वाली एनएचआई जैसी एजेंसियां 2013 के कानून को धता बताकर अधिग्रहण कर रही हैं। कई राज्य सरकारों ने भूमि अधिग्रहण कानून में वैसे संशोधन किए हैं जैसा केंद्र सरकार करना चाहती थी और केंद्र सरकार ने उन राज्यों को इन संशोधनों की अनुमति दे दी है। कुल मिलाकर 120 साल बाद भारत की संसद ने किसानों को इस देश का नागरिक मानते हुए उनकी जमीन छीनने पर जो कुछ मर्यादा बांधी थी, मोदी सरकार ने उन सब मर्यादाओं को दरकिनार कर दिया है।

सन्दर्भः मोदीराज के भूमि अधिग्रहण *अध्यादेश की विसंगतियों के लिए देखेंः Yogendra Yadav, "State power sans public reason", The Hindu, 17 January 2015.*

5.6 वन अधिकार की रक्षा के बजाय कटौती

मोदी सरकार ने जमीन के साथ जो किया उससे भी बुरा जंगल के साथ किया। पिछले पांच साल में मोदी सरकार ने पर्यावरण से संबंधित सारे नियम-कानून कमजोर कर दिए हैं या उन्हें बिलकुल दरकिनार कर दिया है। एक लंबे संघर्ष के बाद बने वन अधिकार कानून के तहत आदिवासी किसानों को वन और वनोपज पर कुछ अधिकार मिले थे। मोदी सरकार ने इनमें कटौती कर दी। यही नहीं, मार्च 2018 में सरकार ने वन नीति में फेरबदल के लिए 'राष्ट्रीय वन नीति 2018' का मसविदा जारी किया। यह नीति वन और वनसंपत्ति को पब्लिक-प्राइवेट-पार्टनरशिप के नाम पर कंपनियों को सौंपने का रास्ता साफ करती है। पर्यावरण संबंधी कानूनों और उन्हें लागू करने के तौर-तरीकों में बड़े पैमाने पर फेरबदल हुए ताकि सामुदायिक जल, जंगल और जमीन को उद्योगों के हाथ सौंपना आसान हो जाए। सन 2015 से 2017 के बीच पर्यावरण मंत्रालय और आदिवासी कल्याण विभाग की मिलीभगत से 300 खानों को जंगल की जमीन खनन के लिए पर्यावरण मूल्यांकन या आदिवासी समुदाय की सहमति के बिना कंपनियों को सौंप दिया गया। इसी तरह समुद्र तट से 200 मीटर के भीतर भवन निर्माण पर लगी पाबंदी को भी ढीला कर दिया गया है जिससे मछुआरों की जगह होटल उद्योग को बढ़ावा मिलेगा।

सन्दर्भः नितिन सेठी के लेखन में मोदीराज *के दौरान वनाधिकार और पर्यावरण कानूनों के हनन का ब्यौरा मिलता है। उदाहरणार्थ, देखेंः Nitin Sethi "Draft National Forest Policy sets up another battle over Forest Rights Act", Business Standard, 20 June 2016*

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 67

अध्याय छह

डबल आमदनी का माजरा क्या है?

अंत में मोदी सरकार के किसानों की आमदनी दोगुनी करने के जुमले का मूल्यांकन करना जरूरी है। यह बीजेपी का चुनावी वादा नहीं था। चुनाव जीतने से पहले या जीतने के तुरंत बाद श्री नरेंद्र मोदी या भाजपा ने इसका कहीं भी जिक्र नहीं किया था। इसे सरकार का दावा भी नहीं कहा जा सकता, चूंकि मोदी सरकार ने यह कभी नहीं कहा कि उसने किसानों की आमदनी दोगुनी कर दी है। यह सरकार की कोई योजना भी नहीं है। कृषि मंत्रालय की योजनाओं या सरकार के बजट के अलग-अलग मद में इसका कहीं जिक्र नहीं है। बस यह एक आश्वासन है, एक सपना है, एक झुनझुना है। सही अर्थ में कहें तो यह एक मृग मरीचिका है, जो तपती हुई धूप में दूर क्षितिज पर पानी के एक तालाब की तरह नजर आती है। जब तक दूर रहते हैं तब तक वह मरीचिका मन मोहती है। लेकिन नजदीक आने पर सूखी रेत के सिवा कुछ नहीं मिलता।

किसानों की आमदनी दोगुनी करने का विचार पहली बार 2016 के बजट भाषण में औपचारिक रूप से पेश किया गया था। उससे एक दिन पहले प्रधानमंत्री ने इसका जिक्र एक सार्वजनिक सभा में किया था। वह दिन है और आज का दिन है। जब भी प्रधानमंत्री, कोई सरकारी अधिकारी या बीजेपी का प्रवक्ता गांव, खेती या किसान की बात करता है तो वह किसानों की आमदनी डबल करने का जिक्र करना नहीं भूलता। यह मोदी सरकार के प्रचार का मूल मंत्र बन गया

है। सुनने में अच्छा भी लगता है। किसान को लगता है कि सरकार उसकी भलाई के लिए प्रतिबद्ध है। लगता है जल्द ही कुछ बहुत बड़ा होने वाला है। बार-बार इस जुमले को दोहराने से यह आभास होता है कि यह एक ठोस योजना है, कि देश तेजी से इस खूबसूरत लक्ष्य की तरफ आगे बढ़ रहा है।

6.1 मंजिल ही पता नहीं थी

सच्चाई इससे कोसों दूर है। सच तो यह है कि इस घोषणा के साल भर तक तो सरकार को यह भी पता नहीं था कि इस जुमले का मतलब क्या है, किसान की आमदनी दोगुनी करने की समयावधि क्या होगी। शुरू में प्रधानमंत्री ने कहा कि यह लक्ष्य छह साल में यानी 2022 तक प्राप्त कर लिया जाएगा। बाद में सरकारी समिति ने इसे खिसकाते हुए 2022-23 यानी कि सात साल का लक्ष्य बना दिया। **असली भ्रम दूसरा था। किसान की आय दोगुनी करने का मतलब क्या है? क्या किसान की जेब में नोट को दोगुनी करने से किसान की आय दोगुनी हो जाएगी?** इसे अर्थशास्त्र की भाषा में नॉमिनल या कागजी बढ़ोत्तरी कहा जाता है। अगर इस हिसाब से देखें तो हर पांच-दस साल में देश के हर व्यक्ति की आय दोगुनी हो जाती है।

जो मजदूर आज से दस साल पहले 150 रुपये दिहाड़ी पाता था वो आज अगर 300 रुपये दिहाड़ी लेता है तो कागज में उसकी आमदनी दोगुनी हो गई। लेकिन महंगाई के चलते वो आज 300 रुपये में लगभग वही चीज खरीद सकता है, जो दस साल पहले 150 रुपये में खरीदता था। आमदनी के दोगुना बढ़ने का मतलब तो तब हुआ, जब पहले से दोगुना ज्यादा सामान और सुविधा खरीदी जा सके। हो सकता है इसके लिए आज 500 रुपये लगे। यह हिसाब करने के लिए आमदनी में महंगाई के असर को हटाकर देखना होगा। अर्थशास्त्र में इसे रियल या वास्तविक बढ़ोत्तरी कहा जाता है।

इसलिए डबल आमदनी के लक्ष्य की घोषणा होते ही देश के अर्थशास्त्रियों ने पूछा कि प्रधानमंत्री कागज में डबल करने की बात कर रहे हैं या फिर वास्तविक आय दोगुनी करने का विचार है। अगर

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 69

आमद सिर्फ कागज में ही बढ़ानी है तो उसके लिए सरकार को कुछ करने की जरूरत क्या है? जैसे-जैसे महंगाई बढ़ेगी, कागजी आय भी बढ़ती जाएगी। लेकिन किसान जहां था, वहीं खड़ा रहेगा। अगर वास्तविक आय बढ़ानी है तो क्या यह छह-सात साल में संभव हो पाएगा? क्या सरकार समझती भी है कि इतनी कम अवधि में वास्तविक आय को दोगुना करने का लक्ष्य कितना बड़ा है? जब ये सवाल उठने लगे तो सरकार सकपकाई और कई महीनों तक उससे जवाब देते नहीं बना। कोई एक साल बाद नीति आयोग के एक परचे में सरकार ने यह स्पष्ट किया कि आय को दोगुना करने के आश्वासन का मतलब वास्तविक आय को दोगुना करना था।

अब सवाल उठा कि किसका दोगुना किया जाएगा? यानी कि सन 2016 में किसान की आय कितनी थी, जिसे बढ़ाकर 2022-23 तक दोगुना किया जाएगा? घोषणा करने के बाद प्रधानमंत्री को पता लगा कि सरकार के पास तो ऐसा कुछ अनुमान ही नहीं है। भारत सरकार तमाम किस्म के आंकड़े इकट्ठा करती है, प्रकाशित करती है। लेकिन किसानों की आय का नियमित आंकड़ा उपलब्ध ही नहीं है। खोजबीन करने पर पता लगा कि पिछली बार भारत सरकार के राष्ट्रीय सैंपल सर्वेक्षण ने सन **2012-13 में किसानों की आमदनी का अनुमान लगाया था। उस वक्त देश के हर किसान परिवार की औसत मासिक आमदनी 6,426 रुपये थी। इसमें से आधी से भी कम आमदनी यानी 3,080 रुपया खेती-बाड़ी की कमाई थी।** बाकी पशुपालन, मजदूरी, व्यवसाय और व्यापार की आमदनी थी। अलग-अलग राज्य की औसत आमदनी में बहुत फर्क था। जहां पंजाब के किसान की औसत मासिक आमदनी 18,059 रुपये थी, वहां बिहार का किसान परिवार सिर्फ 3,558 रुपये में गुजारा कर रहा था। लेकिन ये सब आंकड़े तो 2012-13 के थे। सवाल था कि 2016 में किसान की आय कितनी थी, जिसे 2022-23 तक दोगुना करना था? घोषणा हो चुकी थी, लेकिन इसका जवाब किसी के पास नहीं था।

घोषणा के डेढ़ साल बाद अगस्त 2017 में डबल आमदनी के सवाल पर बनी कमेटी ने अनुमान लगाया कि 2015-16 में देश-भर

के औसत किसान परिवार की मासिक आय 8,058 रुपये थी। यानी कि राष्ट्रीय सैंपल सर्वेक्षण के पिछले अनुमान के बाद तीन साल में किसान की कागजी आय 1,632 रुपये बढ़ी थी। लेकिन अगर महंगाई के असर को हटाकर देखा जाए तो किसान परिवार की औसत वास्तविक आय 6,175 रुपये ही थी। यानी कि इन तीन साल में किसान की वास्तविक आय दरअसल घट गई थी।

इस समिति ने पहली बार किसान की आय के आंकड़ों का विश्लेषण कर यह तय किया कि अगर किसान की वास्तविक मासिक आय को दोगुना करना है तो इसका अर्थ होगा कि 2022-23 तक देश के औसत किसान परिवार की वास्तविक आय 14,391 रुपये प्रति माह होनी चाहिए। लेकिन यह तब जब इस बीच महंगाई बिलकुल न बढ़े। यह व्यावहारिक नहीं है। इसलिए समिति ने अनुमान लगाया कि अगर छह साल में महंगाई की वर्तमान दर जारी रही तो 2022-23 में हर किसान परिवार की मासिक आय 20,250 रुपये तक बढ़ानी होगी। इसका मतलब कि हर वर्ष किसान परिवार की वास्तविक आय 10.4 फीसदी की दर से बढ़नी चाहिए। यह कोई छोटा लक्ष्य नहीं था। देश के इतिहास में कभी भी इस गति से किसान की आय नहीं बढ़ी थी। **किसान तो छोड़िए, पूंजीपतियों को छोड़कर शायद किसी भी वर्ग की आय इस गति से नहीं बढ़ी थी।**

किसान की आमदनी डबल करने के इस 'ऐतिहासिक अभियान' को शुरू करने के डेढ़ साल बाद मोदी सरकार को समझ आया कि इस सफर की मंजिल क्या है। इधर पता भी नहीं था कि लक्ष्य क्या है, उधर धूमधाम से प्रचार जारी था कि देश किसान की आमदनी डबल करने की ओर चल पड़ा है! शायद जब सरकार को समझ आया कि उसने क्या बोझ सर पर उठा लिया है तो उसे सांप सूंघ गया।

6.2 न दिशा तय हुई न सफर शुरू हुआ

किसान की आमदनी डबल करने के इस नारे के पीछे अगर कहीं कोई गंभीरता होती तो सरकार यह घोषणा करने से पहले कम से कम इतना हिसाब-किताब तो जरूर कर लेती कि किसान आज कहां खड़ा

है और उसे कहां तक ले जाना है। कायदे से यह घोषणा करने से पहले इस सफर का लक्ष्य ही नहीं, इसकी दिशा और इसका नक्शा भी बन जाना चाहिए था।

अगर सरकार अपनी इस घोषणा के प्रति गंभीर थी तो उसे चार कदम उठाने चाहिए थेः लक्ष्य का निर्धारण, योजना निर्माण, संसाधन का आवंटन और प्रगति की समीक्षा। सबसे पहले तो छह साल में आय डबल करनी है तो इसका हर साल का लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए था। इस लक्ष्य को अलग-अलग हिस्सों में बांटना होगा। अगर किसान परिवार की आय डबल करनी है तो खेती-बाड़ी की आमदनी कितनी बढ़ेगी, पशुपालन की आय कितनी बढ़ेगी, मजदूरी और व्यवसाय की आय कितनी बढ़ेगी।

उसके बाद इसे मूर्त रूप देने के लिए सरकार को अनेक योजनाएं बनानी होंगी। हर क्षेत्र में आमदनी बढ़ाने के लिए सरकार किन योजनाओं के जरिये क्या बदलाव करेगी। तीसरी और सबसे बड़ी बात यह कि अगर योजनाएं बनतीं तो सरकार को अपने बजट में उसके लिए फंड का प्रावधान करना पड़ता। **बिना संसाधन दिए किसी भी योजना की बात करना या किसी लक्ष्य की प्राप्ति की उम्मीद करना मजाक ही हो सकता है।** चौथी और अंतिम जरूरत थी कि योजनाएं बनाई जातीं तो उनके कार्यान्वयन की समीक्षा होती। हर साल या कम से कम दो साल बाद इसकी जांच होनी चाहिए कि किन सरकारी नीतियों और योजनाओं ने किसान की आय बढ़ाने में किस हद तक मदद की। किस योजना में किस तरह के परिवर्तन की जरूरत है।

हमने ऊपर देखा कि घोषणा करने के डेढ़ साल बाद भी मोदी सरकार ने अपने लक्ष्य का निर्धारण तक नहीं किया था। अगस्त 2017 में नीति आयोग को दी गई रिपोर्ट में पहली बार लक्ष्य तय हुआ। इस समिति ने बहुत विस्तार से हर राज्य और आमदनी के हर हिस्से के लिए अलग-अलग लक्ष्य निर्धारित किए। देर से ही सही, लेकिन इस रपट ने एक गंभीर और संजीदा शुरुआत की। यात्रा का लगभग एक चौथाई समय गुजर चुका था, लेकिन स्पष्ट लक्ष्य निर्धारण से एक अच्छी शुरुआत की जा सकती थी।

लेकिन लक्ष्य निर्धारण के बाद जरूरी था इस लक्ष्य को हासिल करने

के लिए योजनाओं का निर्माण और उन पर क्रियान्वयन की शुरुआत। हर साल किसान की वास्तविक आय में 10.4 फीसद की बढ़ोत्तरी का यह लक्ष्य इतना बड़ा था कि इसे देश और सरकार की पहली प्राथमिकता बनाए बिना यह संभव ही नहीं था। लेकिन मोदी सरकार ने इस दिशा में कुछ भी नहीं किया। आश्चर्य की बात है कि जिस जुमले को यह सरकार दिन-रात दोहराती है, जिसे अपनी उपलब्धि की तरह पेश करती है, उसे कार्यरूप देने के लिए इस सरकार ने कागज पर योजना तक नहीं बनाई है।

ले-देकर पिछले ढाई साल में इस सरकार ने किसान की आमदनी दोगुनी करने के लिए केवल एक ठोस कदम उठाया हैः किसान की आमदनी डबल कैसे की जाए, इस पर विचार करने के लिए एक समिति बनाई है! बेशक इस समिति ने कागज पर अच्छा काम किया है। अब तक इस समिति ने 14 खंडों में अपनी विस्तृत सिफारिशें दी हैं। इनमें से 13 खंड सार्वजनिक किए जा चुके हैं। जुलाई 2018 में समिति की अंतिम सिफारिश वाला खंड भी सरकार को दिया जा चुका है, लेकिन अभी सार्वजनिक नहीं किया गया है। मीडिया की खबरों के अनुसार इस समिति ने सिफारिश की है कि इसकी सिफारिशों पर अमल करने के लिए सरकार एक और समिति बनाए। इधर **किसान अपनी आमदनी डबल होने की आस लगा रहा है, उधर एक समिति एक और समिति बनाने की सिफारिश कर रही है!**

अगर सरकार अपने इरादे के प्रति गंभीर होती तो उसे इस समिति की रिपोर्ट का इंतजार करने की जरूरत नहीं थी। किसान की क्या दशा है और उसे सुधारने के लिए किस दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए, इस आशय के दस्तावेज कृषि मंत्रालय में भरे पड़े हैं। यूपीए सरकार ने भी 2004 में 'राष्ट्रीय किसान आयोग' का गठन किया था। स्वामीनाथन आयोग के नाम से मशहूर इस आयोग ने भी छह खंडों में अपनी विस्तृत रिपोर्ट 2006 में दे दी थी। अगले साल 2007 में देश ने 'राष्ट्रीय कृषि नीति' स्वीकार कर ली थी। कृषि उत्पादन, किसान की लागत और दाम, प्राकृतिक आपदा, कृषि ऋण जैसे विषयों पर दर्जनों रिपोर्टें सरकार की मेज पर पड़ी धूल फांक रही थीं। अगर अच्छी रिपोर्ट से किसान का पेट

भर जाता तो देश का किसान कब का खुशहाल हो चुका होता। जरूरत और-और रिपोर्ट तथा और-और सिफारिशों की नहीं थी, जरूरत ठोस योजनाओं और उनके क्रियान्वयन की थी। अगर सरकार चाहती तो इन पुरानी रिपोर्टों की प्रमुख सिफारिशों पर अमल शुरू कर सकती थी।

अगर सरकार चाहती तो डबल आमदनी वाली इसकी अपनी समिति की शुरुआती सिफारिशों के आधार पर नई योजनाएं बना सकती थी। अगस्त 2017 में इस समिति ने अपनी रिपोर्ट का दूसरा खंड सरकार को सौंप दिया था, जिसमें निम्नलिखित सिफारिशें की गई थीं।

- कृषि में सरकारी निवेश को तत्काल हर साल 16.8 प्रतिशत की दर से बढ़ाया जाए। अगले छह साल में सरकार कम से कम 2,29,904 करोड़ रुपये का अतिरिक्त निवेश कृषि में करे। इस निवेश का मुख्य हिस्सा देश के बारानी इलाकों में हो, जो कि खेती के लिए बारिश पर निर्भर रहते हैं।
- कृषि आयात-निर्यात की एक सुस्थिर नीति बनाई जाए, जिससे भारतीय किसान अंतरराष्ट्रीय बाजार में अवसर का लाभ उठा सकें।
- किसानों की सहकारी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाए ताकि किसान खरीद और बेच में बिचौलियों से बच सकें।
- सरकारी अनुदान और ऋण छोटे किसान, बटाईदार और भूमिहीन तक पहुंचाने की व्यवस्था हो।
- सभी राज्यों के कृषि मंडी कानून में किसानों के हितों के मद्देनजर बदलाव किया जाए।
- बड़ी और मझोली सिंचाई परियोजनाओं की जगह छोटी सिंचाई परियोजनाओं पर पैसा लगाया जाए।

ये कोई नए सुझाव नहीं थे। इस तरह की बातें पिछली तमाम समितियां भी कह चुकी थीं। पंचवर्षीय योजनाओं में भी इन सुझावों को कई बार दोहराया जा चुका था। अगस्त 2017 के बाद समिति ने इन अलग-अलग मुद्दों पर विस्तार से और सिफारिशें की थीं। असली चुनौती थी इन सिफारिशों के आधार पर पुरानी योजनाओं को बदलना, नई योजनाएं बनाना और फिर उन्हें लागू करवाना। इसके लिए राजनैतिक इच्छाशक्ति की जरूरत थी। लेकिन सरकार ने उन्हें लागू करने के बारे

में कोई गंभीरता नहीं दिखाई।

किसान की आय दोगुनी करने की घोषणा हुए ढाई वर्ष से अधिक हो चुका है। अब सरकार के पास लक्ष्य तो है, इस लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा और प्राथमिकता तय करने वाला दस्तावेज भी है। लेकिन इन प्राथमिकताओं को सरकारी योजनाओं में ढालने का नक्शा आज तक तैयार नहीं हुआ है। आज भी सरकार को जब जो मन में आता है, घोषणा कर देती है। किसी भी योजना में जो चाहे परिवर्तन कर दिया जाता है। न कोई समग्र दृष्टि है न ही कोई दिशाबोध। जब योजना ही नहीं है तो संसाधन का सवाल ही नहीं खड़ा होता। हम ऊपर देख चुके हैं कि कृषि क्षेत्र के लिए केंद्र सरकार के खर्च में पिछली सरकारों की तुलना में कोई अंतर नहीं आया है। कुल खर्च का अनुपात जस का तस है, बस फसल बीमा जैसी योजनाओं में फिजूलखर्ची बढ़ गई है। इस सरकार की अपनी समिति ने सार्वजनिक निवेश बढ़ाने की जो सिफारिश की थी, उस पर भी अमल नहीं हुआ है।

जब कागज पर योजना ही नहीं है तो उसकी समीक्षा की बात करना बेमानी है। **सरकार की नीयत का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इतनी बड़ी घोषणा के बाद ढाई साल में सरकार ने यह जांचने की कोई कोशिश भी नहीं की कि किसान की वास्तविक आय कितनी बढ़ी है।** शायद सरकार को पता है कि खबर अच्छी नहीं होगी, इसलिए वह खबर सुनना ही नहीं चाहती है। हां, सरकारी प्रचारतंत्र में नाबार्ड की एक रिपोर्ट के सहारे यह साबित करने की कोशिश जरूर की गई कि उसके राज में किसानों की आय में तेजी से वृद्धि हुई है। दावा किया गया कि चार साल में किसानों की आमदनी 39 प्रतिशत बढ़ गई है। लेकिन जल्द ही इस दावे का भांडा फूट गया। एक तो यह वृद्धि वास्तविक आय की नहीं बल्कि कागजी आय की थी। तिस पर जिन चार साल में वृद्धि का दावा हो रहा था, उनमें से दो साल तो यूपीए सरकार के थे। यों भी नाबार्ड के आंकड़ों से पता लगा कि वृद्धि न तो खेती-बाड़ी की आमदनी में थी और न ही पशुपालन में। दरअसल यह सारी वृद्धि नौकरी और व्यवसाय की आमदनी में थी, जिसका कारण किसान की परिभाषा में फेरबदल था!

इस बीच नीति आयोग ने किसान की वास्तविक आय में वृद्धि के कुछ अनुमान लगाए। सन 2011 से 2016 के बीच किसान की वास्तविक आय में वृद्धि के इस अनुमान के मुताबिक इन पांच सालों में 3.8 प्रतिशत की रफ्तार से आय में बढ़ोत्तरी हुई थी। यानी कि 2016 के बाद भी इसी रफ्तार से वृद्धि हो तो किसान की आय दोगुनी करने में 25 साल लगेंगे!

भारत सरकार के आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार मोदीराज के पहले चार साल में कृषि व संबंधित क्षेत्र की वास्तविक आय (ग्रॉस वैल्यू एडेड) में कछुए की चाल से वृद्धि हुई है। मोदीराज के पहले साल 2014-15 में वृद्धि की बजाय 0.2 फीसदी कमी हुई थी। अगले साल 2015-16 में 0.7 फीसदी की वृद्धि हुई। अगले दो साल में 4.9 फीसदी और 3.4 फीसदी की वृद्धि का अनुमान है। यानी कि अगर इस आधार पर किसान की आय का अनुमान लगाएं तो दोगुनी करने के लिए जरुरी 10.4 फीसदी के लक्ष्य को तो भूल जाइए। मोदी सरकार के पहले चार साल में सिर्फ 2.2 फीसदी आय बढ़ी है। इस हिसाब से तो वास्तविक आय डबल करने में पचास साल भी लग सकते हैं।

सन्दर्भः किसान की आय दोगुना *करने के बारे में अधिकांश सूचना का स्रोत सरकार द्वारा इस बारे में नियुक्त समिति की 13 रिपोर्ट हैं जो कि "Strategy for Doubling Farmers' Income by 2022" शीर्षक से http://agricoop.nic.in/doubling—farmers पर अंग्रेजी में उपलब्ध हैं। ध्यान रहे की यह रिपोर्ट अभी भी प्रारूप ही हैं, चूंकि पाठकों के सुझाव आमंत्रित किये गए हैं और आश्वासन दिया गया है कि अंतिम प्रकाशन से पहले सुझावों को समाहित कर लिया जाएगा। इस रिपोर्ट का 14वां और अंतिम खंड "Comprehensive Policy Recommendations" अब तक सार्वजनिक नहीं किया गया है। इसलिए सरकार की इस विषय पर सोच का अनुमान लगाने के लिए सबसे उपयुक्त दस्तावेज नीति आयोग के सदस्य रमेश चंद द्वारा लिखा एक लंबा लेख है। देखें: Ramesh Chand "Doubling Farmersl Income: Rationale, Strategy, Prospects and Action Plan", NITI Ayog, Government of India, March 2017.*
वर्ष 2012-2013 में किसानों की आय के अनुमान के लिए देखें: "भारत में कृषक परिवारों की आय, व्यय, उत्पादक परिसंपत्तियां और ऋणग्रस्तता", राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण कार्यालय की एनएसएस के 70वें दौर की रिपोर्ट संख्या 576 जो http://mospi.nic.in/sites/default/files/publication_reports/nss_rep_576.pdf पर उपलब्ध है। मोदी सरकार के पहले चार साल में वृद्धि के आंकड़े भारत सरकार के 'आर्थिक सर्वेक्षण' से लिए गए हैं। देखें Economic Survey, 2017-18, Volume 2, p. 100; लेकिन 2017-18 के आंकड़े केंद्रीय सांख्यकीय कार्यालय के अनुमान पर आधारित हैं।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 76

अध्याय सात

मोदी राज जिम्मेवार क्यों?

मोदी सरकार के रिकॉर्ड के इस मूल्यांकन की शुरुआत हमने इस प्रश्न से की थी कि क्या मोदी सरकार इस देश के इतिहास की सबसे किसान विरोधी सरकार है। हमने देखा कि इस सरकार ने किसानों से किए अपने वादे पूरे नहीं किए। हमने पाया कि किसानों के कल्याण के इस सरकार के दावे झूठे हैं। हमने आपदा के दौरान इस सरकार के रिकॉर्ड की जांच की और पाया कि यह सरकार किसानों की मदद करने में असफल रही है। यही नहीं, हमने यह भी देखा कि किसानों की मदद करने के बजाय इस सरकार ने किसानों का नुकसान किया है। जाहिर है ये सब तथ्य हमें इसी निष्कर्ष की तरफ ले जाते हैं कि इस सरकार के दौरान किसान की बदहाली के लिए मोदी सरकार की नीति और नीयत जिम्मेवार है।

लेकिन इस निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले हमें इस सरकार के समर्थकों की दलीलें की जांच भी करनी होगी। **मोदी सरकार के कई पैरोकार यह तो स्वीकार कर लेते हैं कि पिछले पांच साल में किसान की हालत खराब हुई है।** लेकिन वे कहते हैं कि इसके लिए मोदी सरकार को दोष नहीं दिया जा सकता। वे मोदी सरकार के बचाव में पांच दलीलें पेश करते हैं।

■ पहला, कि भारतीय कृषि का संकट तो एक शाश्वत संकट है। मोदी सरकार को इसके लिए दोष नहीं देना चाहिए। किसान की पहले भी

बुरी हालत थी, अब भी बुरी हालत है।

- दूसरा, कि मनमोहन सिंह सरकार ने कृषि को बुरी हालत में छोड़ा था, उसे सुधारते-सुधारते पांच साल लग गए।
- तीसरा, इन पांच सालों में खेती-किसानी की दुर्दशा के लिए सरकार नहीं, प्रकृति को दोष देना चाहिए। दुर्भाग्य से मोदी सरकार के सत्ता में आते ही दो साल सूखा पड़ा। उसके बाद भी जगह-जगह बाढ़, ओलावृष्टि और सूखे की मार होती रही है।
- चौथा, कि कृषि क्षेत्र में गिरावट का कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार है। पूरी दुनिया में कृषि उत्पादों का दाम गिरा है। भारत में भी उसी का असर है, इसमें मोदी सरकार का दोष नहीं है।
- पांचवां, कि खेती-किसानी का विकास केंद्र सरकार की नहीं, राज्य सरकारों की जिम्मेवारी है। पिछले पांच साल में किसानों की दुर्दशा का दोष मोदी सरकार पर मढ़ना गलत है। यह दोष राज्य सरकारों और उनके मुख्यमंत्रियों का है।

मोदी राज में किसानों की बदहाली के लिए मोदी सरकार को जिम्मेवार ठहराने से पहले इन पांचों दलीलों की जांच कर लें।

7.1 शाश्वत संकट?

पहली बात सही है। इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय कृषि पर संकट कोई नई बात नहीं है। **मोदी सरकार के पहले से भारतीय कृषि तीन संकटों का शिकार थी- आर्थिक संकट, आबोहवा का संकट और अस्तित्व का संकट।** चौधरी चरण सिंह के जमाने से किसान नेता कहते आ रहे हैं कि खेती घाटे का सौदा बन चुकी है। किसान की आमद बहुत धीमी रफ्तार से बढ़ रही है, लेकिन उसकी फसल की लागत और घर-खर्च तेजी से बढ़ता जा रहा है। यह आर्थिक संकट कोई चार दशक पुराना है। दूसरा, आबोहवा का संकट भी कम से कम बीस साल पुराना है। हरित क्रांति एक अंधे मोड़ पर आ खड़ी हुई है। भूजल स्तर गिरता जा रहा है। मिट्टी की उर्वरता घट रही है। फसलों में खाद और कीटनाशक का जहर बढ़ रहा है। इन दोनों संकटों के

चलते तीसरा संकट यानी अस्तित्व का संकट भी कोई नया नहीं है। किसानों की आत्महत्या की खबरें पिछले पंद्रह-बीस साल से आ रही हैं। बड़े पैमाने पर किसानों के पलायन की खबरें भी नई नहीं हैं। किसानों के आत्मसम्मान में कमी कोई रातोंरात नहीं हुई है। इसमें कोई शक नहीं कि पिछले सत्तर साल से इस देश की सभी सरकारें कमोबेश किसान विरोधी रही हैं।

लेकिन यहां हम मोदी सरकार को इस संकट का जनक नहीं बता रहे हैं। हम तो यह कह रहे हैं कि मोदी सरकार ने इस संकट को सुलझाने के बजाय इसे और गहरा कर दिया। **पिछली सारी सरकारों ने एक भले-चंगे किसान को इतना बीमार कर दिया कि उसे अस्पताल में भर्ती होना पड़ा। मोदी सरकार ने सिर्फ पांच साल में इस मरीज की यह हालत कर दी कि उसे आईसीयू में भर्ती करना पड़ा।** भारतीय कृषि के संकट की शुरुआत के लिए मोदी सरकार को कोई दोष नहीं दे रहा। शिकायत यह है कि इस सरकार ने कंगाली में आटा गीला कर दिया; संकट के समाधान का रास्ता पहले से भी कठिन कर दिया है।

7.2 यूपीए की विरासत?

दूसरी बात बिलकुल झूठी है। कृषि क्षेत्र में संकट भले ही काफी समय से चल रहा था, लेकिन यह कहना सही नहीं है कि मोदी सरकार को विरासत में मनमोहन सिंह सरकार से कृषि में वृद्धि के लिहाज से बहुत बुरी अवस्था मिली थी। सच यह है कि 2004 से 2014 का दशक भारतीय कृषि में वृद्धि के लिहाज से अपेक्षाकृत बेहतर दशक था। कृषि का बुनियादी संकट तो नहीं सुलझा, और सरकार का किसान विरोधी रुख भी नहीं बदला, लेकिन इन दस सालों में खेती और किसान की अवस्था में कई सुधार हुए। इन दस वर्षों में कृषि की वृद्धि दर 4 प्रतिशत रही, जो कि पिछले दशकों से कहीं बेहतर थी। इस दौरान किसान की वास्तविक आय भी बढ़ी। हमने पहले देखा कि इस दशक में भारत के कृषि निर्यात ने एक बड़ी छलांग लगाई।

यह सब मनमोहन सिंह सरकार की देन नहीं थी। लेकिन उस सरकार

ने एक काम जरूर किया था। यूपीए की पहली सरकार के दौरान सन 2004 से 2009 के बीच कृषि मूल्य व लागत आयोग ने न्यूनतम समर्थन मूल्य में लगातार अच्छी बढ़ोत्तरी की थी। हमने ऊपर देखा कि 2009 के चुनाव से पहले तो उस सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्य में जितनी बढ़ोत्तरी की, उतनी आज तक कभी नहीं हुई। यूपीए की दूसरी सरकार इस सवाल पर ढीली हो गई थी। फिर भी उस सरकार ने 2009 से 2014 के बीच मोदी सरकार की तुलना में न्यूनतम समर्थन मूल्य में कहीं अधिक बढ़ोत्तरी की थी। इसलिए बाकी मामलों में मोदी सरकार मनमोहन सिंह की विरासत को भले ही दोष दे, लेकिन कम से कम खेती-किसानी के क्षेत्र में यह सरासर झूठ होगा। मोदी सरकार द्वारा नियुक्त किसानों की आमदनी दोगुनी करने वाली समिति ने खुद अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है कि 2004-2005 से लेकर 2013-2014 तक का दौर भारतीय कृषि के लिए 'रिकवरी' या उसकी सेहत में सुधार का दौर था। सवाल यह है कि मोदी सरकार के दौरान यह क्रम जारी क्यों नहीं रह सका?

7.3 प्राकृतिक आपदा?

तीसरी दलील इसी से जुड़ी है। यह बात सही है कि सत्ता में आते ही लगातार दो साल राष्ट्रव्यापी सूखे में मोदी सरकार का कोई दोष नहीं है। अगर कोई दोष है तो पिछले सत्तर साल में पर्यावरण की उपेक्षा, जंगल काटने और पहाड़ नष्ट करने की नीतियों का दोष है। जलवायु परिवर्तन के प्रति दुनिया-भर में कायम उदासीनता का दोष है। **मोदी सरकार सूखे के लिए नहीं, सूखे से कारगर ढंग से न निपटने के लिए जिम्मेवार थी।** यहां हम यह न भूलें कि मनमोहन सिंह की सरकार ने भी सन 2009-2010 में एक भयानक राष्ट्रव्यापी सूखे का सामना किया था। लेकिन उस सूखे के बाद कृषि की वृद्धि दर गिर नहीं गई थी। दरअसल, सूखे या अन्य किसी आपदा के समय ही तो किसी सरकार की परीक्षा होती है। अगर सूखे के दौरान सरकारी राहत कार्य की तुलना करें तो मोदी सरकार पिछली सरकारों से बदतर नजर आती है। यों भी दो साल के सूखे से पांच साल की असफलता ढकी नहीं जा सकती।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 80

7.4 अंतरराष्ट्रीय बाजार?

चौथी दलील में भी सच का एक अंश है। सन 2011 के बाद से पूरी दुनिया में कृषि पदार्थों के दाम गिरे हैं। इसका असर भारत पर भी पड़ा है। लेकिन यही तो सरकारी नीति की परीक्षा होती है। जब अंतरराष्ट्रीय बाजार में स्थिति अनुकूल न हो तब क्या सरकार किसान को बाजार भरोसे छोड़ देती है या कि उसे बचाने के लिए कुछ काम करती है? अंतरराष्ट्रीय बाजार में बदलाव के कारण मोदी सरकार की आयात-निर्यात नीति पहले से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गई थी। लेकिन ऐसे में **सरकार ने किसान का हित देखने के बजाय व्यापारियों का हित देखा।** अब भी सरकार एशिया और प्रशांत (पैसिफिक) क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय व्यापार का जो नया समझौता (आर.सी.ई.पी.) करने जा रही है, उसमें फिर खेती और दुग्ध उत्पादकों की बलि चढ़ाने की तैयारी हो रही है।

यों भी अगर अंतरराष्ट्रीय बाजार एक मायने में हमारे खिलाफ हुआ तो उसी अंतरराष्ट्रीय बाजार से मोदी सरकार को एक बहुत बड़ी राहत भी मिली थी। कच्चे तेल का दाम अचानक गिर जाने से मोदी सरकार की झोली में एक बड़ा मौका आया था। सरकार चाहती तो डीजल और खाद के दाम कम कर सकती थी। या फिर पेट्रोल और डीजल पर टैक्स से बढ़ी कमाई से किसान के कल्याण के लिए या उसे आपदा से बचाने के लिए कोई बड़ा काम कर सकती थी। लेकिन मोदी सरकार ने ऐसा कुछ भी नहीं किया। डीजल के दाम बढ़ाए और इससे हुई टैक्स की कमाई का पैसा इधर-उधर खर्च कर दिया।

7.5 राज्य सरकारों की जिम्मेवारी?

पांचवीं दलील तो बस बहाना है। इसमें कोई शक नहीं कि संविधान के अनुसार कृषि-विकास राज्य सरकार के अधिकार क्षेत्र में आता है। लेकिन सच यह है कि अधिकांश राज्य सरकारों के पास पैसा नहीं हैं। इसलिए राज्य सरकारें कृषि पर जो कुछ खर्च करती हैं, उसका एक बड़ा अंश केंद्र सरकार देती है। राज्य सरकारों का बजट तो अपने कृषि

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 81

विभाग के अमले और सामान्य योजनाओं को जारी रखने में खर्च हो जाता है। किसानों की भलाई की किसी भी बड़ी योजना का पैसा केंद्र सरकार देती है। कृषि क्षेत्र में खर्च के लिए टैक्सदाता से कृषि कल्याण सेस (उप-कर) भी केंद्र सरकार वसूलती है। इसलिए न्यूनतम समर्थन मूल्य की घोषणा केंद्र सरकार करती है। खाद्यान्न की सरकारी खरीद का बड़ा हिस्सा केंद्र सरकार देती है। सिंचाई की बड़ी योजनाओं का अनुदान भी केंद्र सरकार देती है। आपदा राहत और फसल बीमा योजना में केंद्र सरकार का बड़ा अंश होता है। मनरेगा योजना का अधिकांश पैसा भी केंद्र सरकार ही देती है। इसलिए किसान की दशा का सीधा संबंध केंद्र सरकार की नीतियों से है।

जो सरकार दिन-रात किसानों की दशा सुधारने का दावा करती है और उसका सारा श्रेय प्रधानमंत्री को देती है, वह सरकार किसानों की दुर्दशा की जिम्मेवारी से कैसे बच सकती है? **अगर केंद्र सरकार जिम्मेवार नहीं है तो प्रधानमंत्री किसानों की आय दोगुनी करने की घोषणा कैसे करते हैं?** यों भी राज्य सरकारों पर जिम्मा डालने से बीजेपी की मुसीबत कम नहीं होती। आज देश के दो-तिहाई राज्यों में बीजेपी या बीजेपी समर्थित दलों की सरकारें हैं। दिन-रात बीजेपी के नेता इसका ढोल पीटते रहते हैं। अगर यह मान भी लें कि किसानों की बदहाली के लिए बीजेपी की केंद्र सरकार से ज्यादा बीजेपी की राज्य सरकारें जिम्मेवार हैं, तब भी बीजेपी के नेता के नाते श्री नरेंद्र मोदी अपनी जिम्मेवारी से बच नहीं सकते।

सीधी बात यह है कि इन पांचों दलीलों में तर्क कम और बहाना ज्यादा है। जो सरकार अपने कार्यकाल में हुई हर छोटी-बड़ी बात का श्रेय लेने को तत्पर रहती है, वह अपने राज में किसानों की दुर्दशा की जिम्मेवारी से पल्ला नहीं झाड़ सकती।

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 82

अध्याय आठ

किसान विरोध क्यों?

अब एक अंतिम सवाल। आखिर मोदी सरकार किसान-विरोधी क्यों है? क्या नरेंद्र मोदी कुछ गलत नीतियों में फंस गए? या कि उनकी नीयत ही खराब है? या कि यह एक गहरी राजनीति का खेल है?

8.1 किसान विरोधी नीतियां और नीयत

अब तक हम देख चुके हैं कि पिछले पांच साल में किसान की हालत और बिगड़ना कोई संयोग नहीं है। इसके पीछे सरकार की नीतियां या कुनीतियां हैं। अगर किसान को फसल का दाम नहीं मिलता तो उसके पीछे न्यूनतम समर्थन मूल्य तय करने की नीति है। अगर न्यूनतम समर्थन मूल्य तय होने के बाद भी नहीं मिलता तो उसके पीछे सरकारी खरीद की नीति है। अगर फसल कम होने के बाद भी फसल के दाम नहीं बढ़ते तो उसके पीछे आयात नीति है। अगर अच्छी फसल होने पर दाम गिरते जाते हैं तो उसके पीछे निर्यात नीति है। किसान अगर मंडी में लुटता है तो यह सिर्फ आढ़ती का खेल नहीं है, उसके पीछे मौजूदा मंडी कानून है। अगर डीजल और खाद के दाम बढ़ते हैं तो यह केवल बाजार का उतार-चढ़ाव नहीं है, इसके पीछे भी सरकारी टैक्स नीति है। प्राकृतिक आपदा भले ही प्रकृति का कोप हो, उसका मुकाबला न करने के पीछे पर्यावरण की अनदेखी और आपदा प्रबंधन की खोट-भरी सरकारी नीति है। फसल को होने वाला नुकसान रोकना भले ही किसान और सरकार के नियंत्रण में नहीं हो, लेकिन फसल बीमा योजना की असफलता के पीछे सरकारी नीति और प्रशासन की असफलता है। बैंक से कर्जा न मिलना या बैंक में किसान का उत्पीड़न सिर्फ बैंक मैनेजर का खेल नहीं

है, उसके पीछे बैंकिंग नियमन की नीति है। आत्महत्या किसान करता है, लेकिन उस आत्महत्या को अदृश्य बनाने और उसके बार-बार होने के पीछे कृषि नीति की असफलता है।

सवाल यह है कि मोदी सरकार के दौरान सब नीतियां किसान विरोधी क्यों बनी? यह सवाल हमें नीयत या राजनैतिक इच्छाशक्ति के सवाल की ओर ले जाता है। अगर मोदी सरकार की नीतियां किसान विरोधी थीं तो इसलिए कि इस सरकार की नीयत किसान विरोधी है। मोदी सरकार के लिए किसान प्राथमिकता नहीं है। **किसान का दुख-दर्द इस सरकार के कर्ता-धर्ता लोगों को दिखाई नहीं देता।** जब व्यापारी जीएसटी से दुखी होता है तो सरकार देर रात तक बैठकर जीएसटी के रेट बदलती है। लेकिन जब किसान पर गाज गिरती है तो कई दिनों तक यह सरकार सुध भी नहीं लेती। जब बीजेपी और कांग्रेस को अपने फायदे के लिए चुनावी चंदे में विदेशी धन पर छूट देने का कानून बनाना होता है तो कुछ ही मिनटों में वह संसद से पास हो जाता है। लेकिन जब 'किसान संसद' के बनाए कानूनों की बात होती है तो उसकी चर्चा के लिए नंबर ही नहीं आता है। **जीएसटी के लिए आधी रात को संसद का सत्र हो सकता है, लेकिन किसान की आत्महत्या को रोकने के लिए संसद का विशेष सत्र नहीं हो सकता।** बड़े उद्योगपति जब बैंकों का कर्जा डुबो देते हैं तब बैंकों को बचाने के लिए सरकार अपनी जेब से दो लाख करोड़ रुपया देने को तैयार हो जाती है। लेकिन जब किसानों की कर्जमुक्ति का सवाल आता है तो सरकार की जेब में एक पैसा नहीं बचता!

8.2 किसान विरोधी राजनीति और व्यवस्था

सवाल यह है कि इस सरकार की नीयत किसान के पक्ष में क्यों नहीं है? क्या इससे पहले की सरकारें किसान की हितैषी थीं? हम पहले ही कह चुके हैं कि आजाद भारत की अधिकांश सरकारें किसान विरोधी रही हैं। लेकिन किसान विरोधी होने के बावजूद बाकी सरकारें अपने स्वार्थ के चलते किसान से जुड़ी रहती हैं। मोदी सरकार पुरानी सरकारों से कई मायनों में अलग है। सन 2014 में बीजेपी को किसान का वोट तो मिला, लेकिन देश के ज्यादातर इलाकों के स्थानीय किसान नेता बीजेपी से नहीं

जुड़े। सब जानते हैं कि बीजेपी के नेतृत्व में व्यापारी वर्ग का दबदबा रहता है। इसलिए इस सरकार में नीचे से ऊपर तक किसान की बात दमदार तरीके से उठाने वाले नेता हैं ही नहीं। वैसे भी इस सरकार में मोदी जी के सामने और किसी की कुछ चलती भी नहीं। दो व्यक्तियों का मनमाना राज है। उन्हें न तो किसानी की समझ है न ही किसान की चिंता। सत्ता का अहंकार असीम है। नरेंद्र मोदी एक व्यक्ति नहीं, एक व्यवस्था का नाम है। इस व्यवस्था में विकास का मतलब है कि गांव उजड़ेंगे, किसान अपने गांव छोड़कर शहरों की झोपड़पट्टी में बसने को मजबूर होंगे। **खेती की जमीन धीरे-धीरे किसान के हाथ से बड़ी-बड़ी कंपनियों के हाथ में जाएगी। बड़ी जमीन का मालिक छोटा किसान बनेगा, छोटा किसान मजदूर बनेगा और मजदूर भूखा मरेगा।** इस व्यवस्था को कृषि के उत्पादन से मतलब है, लेकिन उत्पादक से नहीं। जब तक देश में अनाज का भंडार हो तब तक इसकी चिंता नहीं है कि वो भंडार पैदा करने वाला जियेगा या मरेगा। इस व्यवस्था को फसल उगाने वाले से ज्यादा चिंता फसल खाने वाले और उसे बेचने वाले की है। उपभोक्ता की चिंता इसलिए है कि कहीं खाद्यान्न महंगे हो गए तो उसका वोट नहीं मिलेगा। व्यापारी की चिंता इसलिए है कि व्यवस्था का स्वार्थ सीधे-सीधे उस व्यापारी से जुड़ा है। मोदी सरकार का किसान विरोधी होना न महज संयोग है न सिर्फ एक व्यक्ति की नीयत का दोष। इस समस्या की जड़ राजनीति में है- एक किसान, विरोधी व्यवस्था को बचाने वाली राजनीति में है।

इसलिए मोदी राज को किसान विरोधी करार देना केवल नरेंद्र मोदी नामक व्यक्ति को किसानों का बैरी बताना नहीं है। किसान विरोधी होने के तीन अलग-अलग अर्थ हो सकते हैं। पहला, किसान का वर्ग विरोधी होना, यानी कि जानबूझकर किसान के मुकाबले दूसरे वर्गों का हित साधना और किसान को पीछे धकेलना। ऐसा विरोध करने वाला किसान का प्रतिद्वंद्वी भी हो सकता है और उसका दुश्मन भी। यह भावनात्मक विरोध है जो बैर या दुर्भाव से पैदा होता है। दूसरे अर्थ में किसान विरोधी होने का मतलब है किसान का वैचारिक विरोधी होना। जरूरी नहीं कि किसान का वैचारिक विरोधी उससे बैर या दुर्भावना रखे। वैचारिक विरोधी किसान के प्रति दया भाव या अनुराग भी रख सकता है, लेकिन देश और दुनिया के भविष्य के नक्शे में वह किसान के लिए जगह नहीं देखता। यह मानसिक

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 85

विरोध पूर्वग्रह या अज्ञान से पैदा होता है।

तीसरे अर्थ में किसान विरोध का मतलब है किसान का व्यवस्थागत विरोध, यानी ऐसी नीतियों और संस्थाओं का निर्माण जिससे अंततः किसान को नुकसान होता है। व्यवस्थागत विरोध अनजाने में और भोलेपन में भी हो सकता है। अपने आपको किसान का हितैषी समझने वाले लोग भी उसका व्यवस्थागत नुकसान कर सकते हैं। यह व्यवहारगत विरोध है जो उदासीनता से पैदा होता है।

मोदी राज का किसान विरोध केवल इस सरकार की वादाखिलाफी या झूठे दावों तक सीमित नहीं है। चुनाव से पहले किसानों से बड़े-बड़े वादे करना और चुनाव के बाद उन्हें भूल जाना सरकारों के लिए कोई नई बात नहीं है। बस, मोदी जी वादे से मुकरने के बाद सीनाजोरी भी करते हैं। किसान के कल्याण के बड़े और झूठे दावे करना भी कोई नई बात नहीं है। बस, मोदी राज में दावों और सच के बीच फासला पहले से ज्यादा बढ़ गया है। किसानों का नाम लेकर बड़े पूंजीपतियों के हित में सरकार चलाना भी इस देश में कोई नई बात नहीं है। बस, मोदीजी कुछ ज्यादा खुले तरीके से यह करते हैं। केवल इस आधार पर मोदी सरकार को देश की सबसे किसान-विरोधी सरकार नहीं कहा जा सकता।

मोदीराज इस मायने में अनूठा है कि यह देश की पहली केंद्र सरकार है जो तीनों अर्थ में किसान-विरोधी है। यह व्यवस्थागत रूप में किसान विरोधी है, अपनी सोच और दृष्टि में किसान-विरोधी है और इसकी मंशा किसान के वर्ग विरोध की है। यह व्यावहारिक, मानसिक और भावनात्मक तीनों स्तरों पर किसान-विरोधी है। इस सरकार का किसान विरोध केवल इसकी कृषि-नीति या अनीति को देखकर पता नहीं चलता। इसके लिए इस सरकार की नीतियों को उनकी समग्रता में देखकर उसमें किसान की जगह समझनी होगी। मोदीराज की आर्थिक नीतियों ने उन तमाम संस्थाओं को मजबूत किया है जो अंततः किसान को कमजोर करती हैं। चाहे वो विदेश व्यापार की नीतियां हों, विदेशी निवेश की प्राथमिकताएं हों, या फिर पर्यावरण नीति, प्राकृतिक संसाधनों की नीति या कि ऋण नीति, इन सबमें किसान का हित कहीं दिखाई नहीं देता। जैसा हमने ऊपर देखा, इस व्यवस्था को कृषि उत्पादन की चिंता है, उत्पादक की नहीं। प्रधानमंत्री मोदी और उनकी सरकार की दृष्टि में देश का भविष्य खेती-किसानी में नहीं

बल्कि खेती से दूर हटने में है। मोदीराज जिस विचार का प्रतिनिधित्व करता है, उसमें गांव उजड़ेंगे, किसान के हाथ से खेती जाएगी और किसान शहरों में पलायन कर मजदूर बनेगा।

लेकिन केवल व्यवस्था विरोध और वैचारिक विरोध के मायने में मोदी सरकार देश की पहली या सबसे अधिक किसान विरोधी सरकार नहीं है। व्यवस्था की दृष्टि से देश की सभी सरकारें कमोबेश किसान विरोधी रही हैं। वक्त के साथ-साथ व्यवस्था की किसान के प्रति उदासीनता बढ़ती जा रही है। वैचारिक दृष्टि से संभव है कि मनमोहन सिंह के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार कहीं ज्यादा किसान-विरोधी रही हो। अपने आपको किसानों का हितैषी समझने वाले प्रधानमंत्री देवगौड़ा की सरकार व्यवस्थागत रूप से उतनी ही किसान-विरोधी थी जितनी प्रधानमंत्री मोदी की सरकार। फर्क सिर्फ इतना ही है कि बाकी सरकारों के व्यवस्थागत विरोध की कुछ व्यावहारिक सीमाएं रही हैं, उनका राजनीतिक स्वार्थ उन्हें एक सीमा से अधिक किसान विरोधी होने से रोकता रहा है। मोदी सरकार में न तो ऐसा कोई आंतरिक लोकतंत्र है और न ही ऐसे जमीनी नेता जो इस व्यवस्थागत विरोध की सीमा बांध सकें।

मोदी सरकार की खासियत यह है कि उसने व्यवस्थागत और वैचारिक विरोध के साथ-साथ वर्ग विरोध भी जोड़ दिया। मोदी राज से पहले देश की कोई सरकार नहीं थी जिसने किसानों के प्रति इतना बैर और निष्ठुरता दिखाई हो। चाहे वह जमीन अधिग्रहण में किसान के अधिकार को कमजोर करने की जिद हो या फिर वनाधिकार को छीनने की जल्दी, चाहे लगातार सूखे के बीच सरकारी उदासीनता हो या गिरते हुए भाव के प्रति सरकारी चुप्पी, चाहे नोटबंदी का कहर हो या बढ़ती लागत का बोझ, देश के इतिहास में कोई दूसरी सरकार ढूंढ़ना मुश्किल होगा, जिसने किसानों के प्रति इतनी असंवेदनशीलता बरती हो। इस लिहाज से मोदी सरकार को किसान की वर्ग शत्रु कहना गलत नहीं होगा। मोदी सरकार का यह मूल्यांकन हमें दीनबंधु चौधरी छोटू राम की वह उक्ति याद दिलाता है: **'ऐ भोले किसान, मेरी दो बात मान ले- एक बोलना सीख और एक दुश्मन को पहचान ले।'**

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 87

KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL:KISAN BOOKLET-23-NOV-2018-FINAL.qxd 23-11-2018 12:37 PM Page 88

क्या मोदी सरकार इस देश की सबसे किसान विरोधी सरकार है? अगर आपको ऐसा नहीं लगता तो इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। इसमें किसानों से जुड़े चुनावी वादों, सरकारी दावों, मोदीराज के नारों और नीतियों की समीक्षा की गई है। हो सकता है सारे तथ्य जानकर आपकी राय बदल जाए। अगर आपको लगता है कि यह बात सही है तो भी आप इस पुस्तक को जरूर पढ़ें। हो सकता है इस नजरिये से देखने पर आपकी समझ बदल जाए। जो भी हो, अगर आप गांव-खेती-किसान के बारे में चिंतित हैं, या मोदीराज की दशा-दिशा में दिलचस्पी रखते हैं तो यह किताब आपके लिए है।

योगेन्द्र यादव : अपने 'पूर्वजन्म' में चुनावी विशेषज्ञ के रूप में परिचित योगेन्द्र यादव पिछले चार साल से गांव-गांव की धूल छान रहे हैं, देश-भर में किसानों के संघर्ष से जुड़े हुए हैं। स्वराज अभियान से जुड़कर जय किसान आंदोलन की स्थापना की। देश के कोने-कोने में गांव, खेती, किसानी के सवाल पर यात्राएं कीं। हर तरह के किसानों के सुख-दुख को देखा-दिखाया। किसानों के लिए कागज, सड़क और कचहरी की लड़ाइयां लड़ी हैं। साथ ही देश-भर के संघर्षशील किसान संगठनों को 'अखिल भारतीय किसान संघर्ष समिति' के मंच पर लाने में अहम भूमिका निभाई है। लोकतांत्रिक राजनीति में आस्था के चलते 1983 से ही समाजवादी धारा के राजनीतिक संगठनों के साथ जुड़े रहे। अब वैकल्पिक राजनीति की नवगठित पार्टी 'स्वराज इंडिया' के राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं।

संपर्क : yogendra.yadav@gmail.com